वर्ष ४
पूर्णाङ्क ४८

गुरुकुल-पत्रिका

जुलाई
१९५२

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क मे

अगले अंकों में

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में आन्दोलन विषयक ऋषि दयानन्द का पत्र	श्री हरिदत्त वेदालंकार
वेदों का स्वाध्याय	श्री अरविन्द
दृषद्वती—गंगा का अपर नाम	श्री उदयवीर शास्त्री
राजा और प्रजा का नूतन नगरी में प्रवेश	श्री रामनाथ वेदालङ्कार
हमारी गौण वन सम्पत्ति	श्री अनुकूल चन्द्र

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक-पत्रिका]

भारतीय दर्शन के आधारभूत तत्त्व

श्री उदयवीर शास्त्री

भारतीय संस्कृति के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रतीकों में दर्शन का भी मुख्य स्थान है। समस्त दर्शनों में जिन तत्त्वों का विवेचन किया गया है, उनको यदि कुछ अधिक संक्षेप की दृष्टि से देखा जाय, तो वह सब दो प्रकार के तत्त्वों में सन्निविष्ट हो जाता है। ये दो वर्ग हैं—एक चेतन और दूसरा जड़ अथवा अचेतन। भारतीय समस्त दर्शनों का यह अन्तः स्वारस्य है, कि इन में चेतन वर्ग अपरिणामी तथा जड़ परिणामी अथवा परिवर्तनशील है समस्त विश्व का अधिष्ठाता व भोक्ता चेतन तत्त्व रहता है, और अचेतन की सतत परिणति से विविध सृष्टि का निर्माण हुआ करता है। यह क्रम इतना लम्बा है, कि इसका न कहीं आदि है न अन्त। न केवल भारत अपितु संसार का समस्त दर्शन शास्त्र उलट-फेर कर इन्हीं दो तत्त्वों के विवेचन मे पर्यवसित होता है।

जगत् का मूल उपादान अचेतन है, चेतन तत्त्व जगत् का उपादान न होकर उसका प्रेरयिता, अधिष्ठाता व भोक्ता है, यह भारतीय दर्शन का सार है। अचेतन तत्त्व जगत् का उपादान क्यों हो सकता है? इसका निर्णय करने के लिये प्रथम यह जानना आवश्यक है, कि स्वयं जगत् का स्वरूप क्या है। संसार में दो प्रकार के ऐसे तत्त्व अनुभव में आते हैं, जिनको एक नहीं कहा जा सकता। वे परस्पर इतने विभिन्न और विलक्षण हैं, जैसे प्रकाश और अन्धकार। हम उन में से एक को चेतन और दूसरे को अचेतन अथवा जड़ कहते हैं। चेतन के जो चिह्न अथवा लक्षण विद्वानों ने निर्धारित किये हैं, उनका जहां सर्वथा अभाव है, उन तत्त्वों को अचेतन अथवा जड़ कहा जाता है। इस प्रकार जगत् में मूल रूप से दो वर्ग अथवा दो भिन्न जाति के तत्त्वों की उपलब्धि होती है। चेतन को आत्मा और अचेतन को प्रकृति कहा जाता है।

यदि यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि चेतन आत्मा के अतिरिक्त शेष समस्त जगत् जड़ है, तब हमें उसके ऐसे ही उपादान को मानने के लिये झुकना पड़ेगा। पर इसके साथ एक अन्य विचारधारा भी है, जहां यह स्वीकार किया गया है, कि चेतन और अचेतन मूल रूप से सर्वथा दो भिन्न वर्ग नहीं हैं, चेतन, अचेतन के रूप में अथवा अचेतन, चेतन के रूप में परिवर्तित हो सकते हैं। इसका फल यह होता है कि मूल में एक ही तत्त्व मानने की आवश्यकता रह जाती है या वस्तु-स्थिति में एक ही तत्त्व मूल रूप में होना चाहिये। इस आधार को लेकर विद्वानों के दो सघ संसार में देखे जाते हैं। एक का कहना है कि मूल तत्त्व चेतन है। वही चेतन तत्त्व इस विलक्षण जगत् के रूप में परिणत होता या भासता है। यह विचारधारा भारतीय दर्शन शास्त्र में वेदान्त एवं अनेक उपनिषदों की समझी जाती है। इस रूप में वेदान्त और उपनिषदों की सर्वभेद

व्याख्या भगवान् आदि शंकराचार्य ने की है। यह नहीं कहा जा सकता कि शंकराचार्य से पहले वेदान्त और उपनिषदों की इस प्रकार की व्याख्या नहीं की जाती थी। निश्चित ही यह विचार परम्परा पर्याप्त प्राचीन है, पर इसके परिमार्जित असन्दिग्ध उल्लेख उतने प्राचीन आज उपलब्ध नहीं हैं। अतएव इस विचारधारा के साथ आचार्य शंकर का नाम जुड़ गया है। इसका यह अभिप्राय न समझना चाहिये कि भगवान् शंकर इनका उपज्ञ है, अथवा उस से पूर्व इन विचारों का सर्वथा अस्तित्व न था।

विद्वानों का दूसरा संघ यह कहता है कि मूलतत्त्व अचेतन अथवा जड़ है। यह विचारधारा पहला से प्राचीन है। भारतीय प्राचीन इतिहास से यह ज्ञात होता है कि इसका आदि प्रवर्तक आचार्य बृहस्पति था। उसने समस्त चेतनाचेतन जगत् के मूल में एक ही तत्त्व को स्वीकार किया है और वह जड़ अथवा अचेतन है। उसका ही नाम अन्यत्र प्रकृति अथवा अधिभूत है। वही तत्त्व किसी अवस्था में आकर एक ऐसे विशेष अस्तित्व को प्राप्त कर लेता है, जो उसकी पहली वास्तविक अवस्था से अति विलक्षण प्रतीत होता है, अधिभूत की उसी अवस्था के नाम चेतन, अध्यात्म आदि रख लिये जाते हैं। पहले विचार में जिस प्रकार चेतन, मूल एवं वास्तविक तत्त्व है और यह अचेतन उसी का अवास्तविक विनाशी विकार अथवा परिणाम समझा जाता है इसी प्रकार दूसरे विचार में मूल वास्तविक तत्त्व जड है उसका ही एक विशेष परिणाम अथवा विकास या विकार चेतन है, जो कुछ काल तक उस अवस्था में टिमटिमा कर बुझ जाता है और अपनी इस अवास्तविक स्थिति को छोड कर फिर उसी मूल वास्तविक अवस्था जड़ रूप में चला जाता है। इस प्रकार परस्पर विलक्षण इन दोनों मान्यताओं को स्वीकार करने वाले विद्वान् एक दूसरे से सर्वथा विपरीत अर्थ का प्रतिपादन करते हुए देखे जाते हैं।

तत्त्वानुसन्धान की इन दोनों विचारसरणियों में जब गहराई से पैठा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि इन दोनों की विभिन्नता ऊपर से ही प्रतीत होने वाली है। वस्तुत: इन दोनों का आधार एक है, और और वह यह है कि समस्त चेतन अचेतन जगत् का मूलतत्त्व एक है। यह आगे का विचार है कि उस मूलतत्त्व का स्वरूप क्या माना जाय, या मूलतत्त्व क्या हो सकता है। वस्तुतः उसका स्वरूप तो एक ही सम्भव है, केवल विभिन्न रूप से हमारे विचार करने से वस्तु-स्थिति में कोई अन्तर नहीं आ सकता। हां! हम उस के नाम अलग अलग अवश्य रख सकते हैं और उन नामों का आधार हमारे विचारों की विलक्षणता समझा जा सकता है। मान लीजिये, कि हमने उस मूल तत्त्व को 'चेतन' नाम दे दिया है। चेतनवादी विद्वानों ने उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये जो निष्कर्ष मालूम किये हैं उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि वह मूलतत्त्व, चेतन और अचेतन समस्त जगत् का उपादान है। मूलतत्त्व का यही स्वरूप दूसरे संघ के विद्वान् भी कहते हैं। उनकी भी यही धारणा है कि इस समस्त चेतन जड़ जगत् का एक ही मूल उपादान है और वास्तव में वह जड़ है। इस विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले संघ के विद्वानों को 'चेतन-वादी' या आत्मवादी केवल इस आधार पर मान लिया जाता है कि उन्होंने मूलतत्त्व का नाम चेतन अथवा आत्मा रख लिया है। इसी प्रकार दूसरे संघ के विद्वानों को जो अनात्मवादी अथवा अधिभूतादि या जड़वादी कहा जाता है, उसका केवल यह कारण है कि उन्होंने मूल तत्त्व का नाम जड़ अथवा अनात्मा बताया है। उसके वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में दोनों ही विचारों के अनुसार कोई विभेद नहीं कहा जा

सकता, जब कि दोनों यह कहते हैं कि चेतन और अचेतन समस्त जगत् उस एक ही मूल तत्त्व का विकार या परिणाम है। चेतन, अचेतन रूप में अथवा अचेतन, चेतन रूप मे परिणत हो जाता है, ये दोनों कथन उक्त विचारधाराओं को एक ही स्तर पर ला पटकते हैं। ऐसी स्थिति मे इनको परस्पर इतना विलक्षण नहीं माना जा सकता, जैसे कि ये आपाततः कहने में प्रतीत होती हैं।

इस प्रसग मे वास्तविक विवेचनीय अर्थ यह है कि इन दोनों प्रकार की अनुभूतियों का जो चेतन और अचेतन को विभिन्न रूप म उपस्थित करती हैं, क्या यह विभेद वास्तविक है? अर्थात् इन दोनों प्रकार के तत्त्वों का मूल रूप म वास्तविक अस्तित्व है? अथवा ये किसी एक ही तत्त्व के दो रूप हैं जो विभिन्न अनुभूतियों के आधार हैं।

इस स्थिति को मान लेने पर कि ससार में दो विलक्षण प्रकार के तत्त्वों की अनुभूति होती है, निर्बाध रूप में यह नहीं कहा जा सकता, कि मूल में भी इन दोनों का अस्तित्व है, क्योंकि एक मूल तत्त्व दोनों विलक्षण रूपों में प्रतीत हो सकता है। तब मूल में एक ही तत्त्व माना जाना चाहिये, यह अभी ऊपर निर्देश किया गया है कि इस सिद्धान्त के आधार पर ससार में विद्वानों की दो विभिन्न विचार धारा अति प्राचीन काल से प्रचलित है, जिन मे कुछ विद्वान् मूल तत्त्व का स्वरूप चेतन बताते हैं, जब कि दूसरे उसी मूल तत्त्व को अचेतन अथवा जड़ कहते हैं। पर यह निश्चित है कि वह एक ही मूलतत्त्व जड़ और चेतन दोनों रूप नहीं हो सकता। वे विद्वान् स्वय भी ऐसा नहीं मानते। प्रत्युत उस तत्त्व के मूल रूप को एक ही मान कर अन्य स्थिति को उसका विकार या परिणाम बताते हैं। केवल चेतनवादी मूलतत्त्व को चेतन स्वरूप मान कर समस्त जड़ जगत् को उसी का विकार कहता है, जबकि भौतिकवादी मूलतत्त्व को जड़ बता कर ससार में प्रतीयमान चेतन अनुभूति को भी उसी का विकार अथवा विकास-प्रतिपादित करता है।

इस स्थिति के सामञ्जस्य के लिये दो बातें सम्मुख आती हैं, या तो इन विचारों की केवल आंशिक सत्यता स्वीकार की जाय अन्यथा दोनों मे से कोई एक अवश्य असत्य सिद्ध होगा। समस्त प्राकृत जगत् जड़ तत्त्व का विकार है, यह ठीक है। पर यह अनुभूयमान चेतना भी जड़ का ही विकार है, इसकी वास्तविकता को भौतिकवादी अभी तक स्पष्ट नहीं कर पाये हैं। उनका यह कहना कि चेतना के अंश जड़ तत्त्वों में ही विद्यमान रहते हैं अथवा अनन्त जड़ प्रकृति के गर्भ में ही चेतन का भण्डार भरा पड़ा है और अवसर पाकर प्रकट रूप में आ जाता है, इस बात को स्पष्ट करता है कि जड़ तत्त्व ही स्वय चेतन का स्वरूप ग्रहण नहीं करता, प्रत्युत उसकी सत्ता प्रकृति के साथ स्वतन्त्र रूप में सदा बनी रहती है। आज तक किसी भी आधिभौतिक वादी वैज्ञानिक ने इस प्रकार के आधार प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं जिस से यह स्पष्ट किया जा सके कि जड़ तत्त्व ही चेतन का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इस लिये आधिभौतिकवाद का इतना अंश सत्य है कि समस्त जड़ जगत् मूल उपादान जड़ प्रकृति है। चेतन तत्त्व जड़ का विकार नहीं है।

इसी प्रकार केवल चेतनवाद में, चेतन के अस्तित्व पर अधिक बल देने का यह कारण प्रतीत होता है कि चेतन के बिना अकेला अचेतन किसी प्रकार की प्रवृत्ति कर नहीं सकता। उसी के आश्रय अथवा प्रेरणा में प्रकृति के समस्त विकार हुआ करते हैं। इतने अंश में इस विचार को वास्तविक कहा जा सकता है। पर चेतनवादी चेतन से अतिरिक्त तत्त्व की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सके हैं। माया नाम से उन विद्वानों ने प्रकृति के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

दान की महिमा

श्री ओम्प्रकाश

बृहदारण्यकोपनिषद् में एक कथा आती है। एक बार देवता, मनुष्य और राक्षस तीनों प्रजापति ब्रह्मा के पास उपदेश लेने गये। तीनों ने ही निरन्तर कई वर्षों तक प्रजापति की उपासना और आराधना की थी, अतः प्रजापति उन से प्रसन्न थे। राक्षसों ने जब उपदेश की प्रार्थना की तो प्रजापति ने कहा 'द'। मनुष्यों को भी इसी 'द' अक्षर का उपदेश दिया। देवताओं के लिए भी उपदेश में 'द' अक्षर ही कहा। तीनों प्रकार के व्यक्ति अपने २ अनुसार सोचने लगे कि आखिर प्रजापति ने हमें इस द अक्षर से क्या उपदेश दिया है। राक्षसों ने सोचा कि हम स्वभाव से क्रूर

उन के विचार से माया एक ऐसा तत्व है, जो चेतन ब्रह्म का स्वरूप नहीं हो सकता। चेतन का जो वर्णन उन विद्वानों ने किया है, वही वर्णन वही स्वरूप माया का नहीं है। फलतः उन के विचार के अनुसार भी वे दोनों परस्पर विलक्षण तत्व हैं, यह निर्भ्रान्त रूप में कहा जा सकता है। इस प्रकार अचेतन तत्त्व को चेतन का विचार नहीं माना जा सकता। इस का परिणाम यह निकलता है, कि मूल में चेतन और जड़ दोनों ही तत्वों के अस्तित्व को स्वीकार किया जाना चाहिये। कपिल ने दार्शनिक विवेचन के इसी प्रकार के आधार को स्वीकार किया है।

कपिल की विचार धारा, जो वास्तविक तत्त्व-निर्देश का एक मूलभूत आधार है केवल इसलिए सच नहीं मानी जानी चाहिये, कि उपर्युक्त दोनों परस्पर विरोधी विचारों में से किसी एक को असंदिग्ध रूप में स्वीकार किया जाना अशक्य है, इस लिए किसी मध्यमार्ग का आश्रय लेना आवश्यक होगा, प्रत्युत चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के तत्त्वों के अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का यह एक रहस्य है, जिस को उद्घाटन करने के स्पष्ट संकेत कपिल ने किये हैं।

जब परस्पर विरोधी उपर्युक्त दोनों विचार धारा एक दूसरे का प्रत्याख्यान करती हैं, तब उन से दो परिणामों पर पहुँचा जा सकता है। प्रथम तो यह कि दोनों का एक दूसरे के प्रत्याख्यान द्वारा, वास्तविकता का शून्य में पर्यवसान मान लिया जाय, और यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाय, कि किसी तत्व का वास्तविक अस्तित्व नहीं है। परन्तु संसार में होने वाली वास्तविक अनुभूतियां के परिणाम इस के विपरीत जाते हैं, इस लिये केवल अन्धानुकरण रूप में इस स्थिति का स्वीकार कर लेना वास्तविकता से दूर जा पड़ना है। तब दूसरा परिणाम यह हो सकता है, कि मूलभूत तत्वों की स्वीकृति में उन के पारस्परिक विरोध की कल्पना का ही अवसर न हो। दार्शनिक विचारों के आदि उदय काल में कपिल ने इस वास्तविकता को गहराई तक समझा, और उस के फलस्वरूप प्रतिपादन किया, कि चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के तत्वों का वास्तविक अस्तित्व भी परस्पर विरोधी न हो कर सहानुभूतिपूर्ण रहता है, तथा इसी सहयोग के आधार पर समस्त संसार चक्र चालू है। इस प्रकार समूचे जड़ जगत् का मूल उपादान अचेतन प्रकृति है, और उस के सहयोग में चेतन अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है, यह अधिक युक्तियुक्त और वास्तविक सचाई के अधिकाधिक समीप है। यह कहना कठिन एवं अप्रामाणिक होगा, कि एक ही जड़ अथवा चेतन, समस्त चेतन अचेतन जगत् का मूल है। फलतः भारतीय दर्शन के विवेच्य आधार भूत तत्व चेतन और अचेतन उभय हैं।

★

होते हैं, अतएव हमें 'द' से दया करने का उपदेश दिया होगा। मनुष्यों ने सोचा कि हमारे में स्वभाव से कजूस वृत्ति विद्यमान होती है, अतएव हमे दूसरों को दान करते रहना चाहिये। देवों ने भी विचार किया कि हमें 'द' से दमन अर्थात् इन्द्रियों को वश में करने के लिये कहा होगा। तीनों इस प्रकार अपने २ अनुसार एक ही अक्षर द' से उपदेश लेकर चले गये। विचारणीय यह है कि प्रजापति ने मनुष्यों को 'द' से दान करने का ही उपदेश क्यों दिया।

ससार में मनुष्य जब पैदा होता है तब से उस की स्वाभाविक वृत्ति होती है कि वह पदार्थों का अपने पास खूब सञ्चय करे। मनोवैज्ञानिक इस वृत्ति को ममता या स्वामित्व यह नाम देते हैं। ज्यों ज्यों वह बढ़ता जाता है त्यों त्यों सञ्चय करने की उसकी यह प्रवृत्त भी बढ़ती जाती है। १००) मासिक वेतन पाने वाला व्यक्ति २००) मासिक वेतन की इच्छा करता है। २०० हो जाने पर ४००, फिर ८०० इस प्रकार हमेशा अधिक से अधिक धन सग्रह को उस की यह प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जाती है। धन कमाने की यह प्रवृत्ति वेद की दृष्टि में बुरी नहीं, वेद का कहना ही है कि 'वसुमान् भूयासम्' अर्थात् हे मनुष्य तू खूब धन कमा। परन्तु केवल पदार्थों और ऐश्वर्यों का सञ्चय कर के उसे किसी सुयग्य पात्र को दान न देना, किसी शुभ कर्म में न लगाना, दीन, दुखियों, निराश्रितों, भूखों और नगों की सेवा में खर्च न करना एक महान् दोष और दुर्गुण है जो मनुष्य में स्वभाव से घर किये होता है। इसीलिये ब्रह्मा ने मनुष्यों को 'द' अक्षर से और किसी वस्तु का उपदेश नहीं दिया। उन्होंने यह नहीं कहा कि वह ससार में मोटरों, हवाई जहाजों पर बैठ कर सैर करे और बड़े बड़े आलीशान भवनों में मौज करे। निस्सन्देह वह भी करे, परन्तु उस के साथ साथ उसे याद रखना चाहिये कि दान के अभाव में यह सब वस्तुएं सुख देने के स्थान पर दुखदायक सिद्ध हो सकती हैं।

हमारे आदि पवित्र ग्रन्थ वेद हैं। चारों वेदों में मनुष्य को स्थान स्थान पर दान करने की प्रेरणा की गई है, मानो परमेश्वर भी मनुष्य को इस सहज जान प्रवृत्ति से रोकने के लिये पहले ही उन्हें सचेत कर देना चाहता हो। वेद का सन्देश है—

'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सकिर'

(अथर्व० ३ । २४ । ५)

अर्थात् हे मनुष्य ! तू धन कमा और खूब कमा। धन कमाते हुए तू सैकड़ो हाथों से उन एश्वर्यों का सञ्चय कर। परन्तु दान करते समय तेरे वे सौ हाथ एक या दो नहीं रह जाए अपितु वे हजार हो जाये। हजारों हाथों से निरन्तर तू दान करता रह। तेरे द्वार से कोई भूखा बिना भोजन के लौटने न पाए, कोई नगा बिना वस्त्र के जाने न पाये, कोई निराश्रित बिना घर के न रहने पाये। कितना सुन्दर उपदेश है वेद का।

वेद के इसी सत्य और सन्देश को आज से कई हजार वर्ष पूर्व हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों और राजाओं ने समझा था और इसे अपने जीवन में अपनाया था। रावण को चाहे हम कितना ही बुरा कहें, परन्तु उसने वेद की इस आज्ञा को क्रियात्मक रूप में अपने जीवन में स्थान दिया था। इसी दान के कारण कुन्ती पुत्र कर्ण, सूत पुत्र कर्ण हो कर भी अपनी कीर्ति पताका इस ससार क्षेत्र मे सदा लहराता रहेगा। राजा हरिश्चन्द्र भी इसी कारण सदा' अमर बने रहेंगे। वेद की इसी वाणी को ईसाइयों के धर्म गुरु ईसा ने भी समझा था। तभी तो वह पुकार पुकार कर कहता था कि 'यदि तेरा पड़ौसी नगा है और तेरे पास दो कुर्ते हैं तो एक उसे दे दे। आज का शिक्षित वर्ग

उस के इस उपदेश पर हस सकता है, ताने कस सकता है और केवल कोरी कल्पना और आदर्श कह कर टाल सकता है परन्तु जिस दिन और जिस समय वह वेद की इस वाणी को अपने जीवन में क्रियात्मक रूप में अनुभव कर लेगा, तब उसे पता चलेगा कि सचमुच वेद की वाणी में कितना महान् सत्य और आनन्द छिपा था।

दान करने का यह उपदेश वेद म गौण नही है, अपितु स्थान-स्थान पर लोगों को वेद यही सदेश देता दीखता है। यह देखिए अथर्ववेद के ही ७ वे काण्ड के २६ वे सूत्र के ८ वें मन्त्र में वेद भगवान् फिर बोल उठे हैं—

हे मनुष्य ! दाए, बाए दोनों हाथों से भर भर कर दान कर। तथा—

तू धनों का दान कर और खूब भर भर कर दान कर। आज सर्वत्र वेद की इसी भावना को समझने की आवश्यकता है। अनेक कल्पों और युग युगान्तर से वेद भगवान् मनुष्य की इस प्रवृत्ति से बार बार उसे सचेत कर रहे हैं।

यहा पर प्रश्न होता है कि आखिर दान न करने से हानि क्या है ? क्यों न सब अपना-अपना कमाए और खाए और क्यों बेफायदा किसी को कुछ देकर उसे अपने प्रति कृतज्ञ बनाए जाए। यहा हम इसी प्रश्न पर वेद के ही दृष्टिकोण से कुछ विचार करगे

दान न करने से कुछ हानिया तो ऐसी है जिन्हें मनुष्य स्वय अपने जीवन में अनुभव कर सकता है। भिक्षा पाने, सञ्चय करने तथा उस का दान न करने से मनुष्य के अन्दर एक कजूसी का भाव आ जाता है। ऐसे समय वह अपने ऊपर भी धन खर्च करना फिजूलखर्ची समझता है। बौद्ध ग्रन्थ जातकों में इस सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरञ्जक कथा आती है कि एक बार वाराणसी नगर में एक बड़ा भारी सेठ रहा करता था जो जितना धनवान् था उतना ही कजूस भी था। एक बार उस की मधु पीने की बड़ी इच्छा हुई परन्तु यदि वह पिए तो घर में इस के पुत्र स्त्री आदि को भी देना पडे, इस से खर्च बेफायदा दुगना और तिगुना हो जाने की सम्भावना थी। कुछ दिनों तक उन्होंने आत्म नियन्त्रण रक्खा, आखिर जब इच्छा बहुत बलवती हो गई और उन्हें अपने पर नियन्त्रण रखना दुष्कर हो गया, तब उन्होंने अपनी स्त्री से चुपचाप इस का प्रबन्ध करने को कहा और उसे लेकर वे दूर कहीं सुनसान स्थान पर एक घनी झाड़ी के नीचे हो कर डरते डरते पीने लगे। कहानी लम्बी है परन्तु यहा उस का इतना ही तात्पर्य है कि जिस प्रकार वह सेठ दान न करने से एक छोटी सी चीज के स्वय उपभोग करने में भी डरता रहा, वैसी ही प्रवृत्ति प्राय दान न करने वालों की हो जाती है। इसी कजूसी के बारे में वद कहता है—

'वेद त्वाह निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते।'

(अथ० ५ ७. ७)

अर्थात् हे कजूसी ! मै तुझे जानता हूँ कि तू विनाश करने वाली और व्यथा देने वाली है। इस लिए मैं चाहता हूं कि—

उत्तिष्ठाराते प्रपत मेह रस्था ।'

(अथ० १४ २. १६)

तू उठ भाग और हमारे पास न रह।

इस प्रवृत्ति के अतिरिक्त सञ्चित धन की रक्षा में जो परिश्रम और कष्ट होता है वह भी कुछ कम व्यथा-दायक नहीं है। अधिक धनी व्यक्तियों को रात्रि में नींद आराम से नहीं आती, चोरों का डर सताता रहता है। अपनी स्त्री और पुत्रों से भी डर लगा ही रहता है कि कहीं वे धोका न दे दें। भारतवर्ष के कुबेर हैदराबाद

के निज़ाम के बारे में सुना जाता था कि उन के पास सोने से भरी चार कोठरियां थीं जिन में वे रात को बारी बारी से दो दो घण्टे सोया करते थे। इस के विपरीत दान करने वालों की दशा का वर्णन भी ज़रा वेद के ही मुख से जानने की कृपा करें। वेद कहता है—

'सुगुरसत्सुहिरण्य· स्वश्वो, बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति। यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति' (ऋग्वेद १। १२५। २)

अर्थात् प्रभात वेला मे अपने द्वार पर अन्य किसी अतिथि या भिक्षुक को जो अपनी दान रस्सी से अच्छी प्रकार जकड लेता है वह खूब उत्तम २ गाए वाला हो जाता है अर्थात् खूब ऐश्वर्यवान् बन जाता है और उस की आयु भी खूब लम्बी हो जाती है। कैसा चमत्कार है वेद का यह! दीजिए आप दान मे अपनी सब ऐश्वर्य सम्पत्ति, बदले में आप को उस से दुगना और तिगुना ऐश्वर्य मिलेगा। दे डालिए अपना घोड़ा आदि सब वाहन उसके बदले में और भी उत्तम २ वाहन आप को प्राप्त होंगे। लगाए अपना सब समय निरन्तर दान चर्चाओं में, आप को संसार भर में काम करने का और भी अधिक समय मिलेगा, आप की आयु लम्बी होगी, सुख समृद्धि बढ़ेगी और समाज मे जो आप की प्रतिष्ठा और यश होगा, उस का तो कहना ही क्या—

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति, दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय॥
(ऋग्वेद १०। १०७। ५)

अर्थात् सब समाजों में, समाजों में दानी मनुष्य सब का नेतृत्व करता है। विशाल जन-समुदाय का नेता भी दानी ही बनता है। सच पूछो तो दानी मनुष्य ही वास्तव में सब का हृदय सम्राट् होता है।

बहुधा दान करने वाला मनुष्य अपने सञ्चित ऐश्वर्य के बल पर सोचा करता है कि मैं अमर हो जाऊँगा। इतिहास बताता है कि मुहम्मद गौरी और शहाबुद्दीन ने भी यही सोचा था। परन्तु मरते समय उन्होंने देखा—

'न वा उदेवा क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितम् उप-गच्छन्ति मृत्यवः' (ऋग्वेद १०। ११७। १)

कि मृत्यु भूखों और नंगों के पास ही नहीं अपितु खाने पीने वाले अमीर मनुष्यों के पास भी अवश्यमेव आती है। भेद केवल इतना ही है कि कोई आज कराल-काल के जबड़ों म है तो किसी का कल बारी है। अतएव आइए! वेद की आज्ञानुसार अपने इस थोडे से समय में दान करने का महान् व्रत लेकर अपने जीवन को सुफल कर लें। ये सम्पत्तियां तो बड़ी चञ्चल हैं—

'ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमुपतिष्ठन्त रायः।'

रथ के पहियों के समान यह लक्ष्मी का चक्र बड़े वेग से सदा घूमता रहता है। तब फिर क्यों न दान कर स्थायी सुख और ऐश्वर्य का सञ्चय करें?

दान की महिमा और ऐश्वर्य के पश्चात् यह भी एक अत्यन्त आवश्यक विचारणीय विषय रह जाता है कि दान तो करना चाहिए परन्तु किन को? क्या कुम्भ या ऐसे दूसरे अवसरों पर आए असंयमी साधुओं को दान करें जो संसार में शान्ति और सदाचार के स्थान पर निरन्तर दुःख और दुराचार का बीज बोने में तत्पर हैं अथवा क्या आज की अधिकांश हिन्दू जनता के विश्वास के अनुसार उन बेफायदा घूमते हुए कुत्तों, चींटियों और सांपों को ज कर रोटी, दूध आदि का दान करें, जब कि देश में मनुष्यों तक को खाने के लिए अनाज उपलब्ध नहीं होता है। क्या वेश्याओं, चोर बाज़ारी करने वाले बड़े बड़े दुष्ट पुरुषों, चार, लुटेरे डाकुओं को जी खोल कर दान करें? तो फिर किस को दान करें? वस्तुतः आज हमारा देश इसी प्रश्न की

मीमांसा में डुबकी लगा रहा है। उसे पता नहीं कि वह दान किस को करेगा, दान देना हमारे देश में प्रारम्भ से ही एक महान् और ऊंचा कर्तव्य समझा जाता रहा है, परन्तु दान देते समय सदा हम ने गलती की। प्राचीन समय में महारानी सीता ने रावण को (भिक्षा) दान दे कर गलती की थी पाण्डवों ने कौरवों को बार बार क्षमा दान दे कर उसी गलती को दोहराया, परशुराम को भी कर्ण को अपनी विद्या देकर बाद में कुपात्र विचार कर पश्चात्ताप करना पड़ा। इसी गलती के कारण पृथ्वीराज ने मुहम्मद गौरी को बार बार क्षमादान देकर भारतवर्ष को अनेक वर्षों के लिए गुलाम और पराधीन बना दिया था और इसी गलती को आज फिर हमारा समस्त देश दुहराने में लगा हुआ है, उसी का परिणाम है कि देश में भुखमरी और बेकारी निरन्तर घर किए जा रही है। इसी लिए वेद दान देने की प्रेरणा के साथ साथ प्रत्येक मनुष्य को इस बात के लिए भी सचेत कर देना चाहता है कि वह दान के समय कुपात्र और सुपात्र का अवश्य विचार कर ले, उस का सन्देश है—

'रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय'

(अथ० १८ ३ ४३)

कि हे मनुष्य! तू दान तो कर पर उन्हें ही जो परोपकारी हों, जो सदैव समाज के उपकार में संलग्न रहते हैं। तेरा दान चाणक्य जैसे उन तपस्वी और निरीह ब्राह्मणों और साधुओं को जाए, जो एक महा-साम्राज्य के महा मन्त्री हैं। तथापि जिन के घर की दशा है—

उपलकलमेतद्भेदकं गोमयानाम्
वटुभिरुपहृताना बर्हिषां स्तूपमेतम्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-
विनमित पटलान्त दृश्यते जीर्ण कुड्यम्॥

(मुद्राराक्षस ३। १५)

जीर्ण पर्णकुटी के एक कोने में पाथियों को तोड़ने के लिए एक हथौड़ा रक्खा है, दूसरे कोने में बटुओं द्वारा लाई कुशाओं का एक बण्डल पड़ा हुआ है। पर्ण कुटिया की छत सुखाई गई लकड़ियों के बोझ से झुक गई है और जिस के अन्दर अनेक शिष्यों से घिरे महामात्य चाणक्य का आसन विराजमान है। तभी तो वह त्यागी ब्राह्मण एक बड़े साम्राज्य का मन्त्री पद सम्भाल सका। इस लिए आज आवश्यक है कि हमारी भावना इस प्रकार की हो कि—

'न पाप त्वाय रासीय'

(अथ० २०. ८२ १)

मैं पाप कर्म के लिए कभी दान न दूं।

वेद की दान की इस भावना का आज सब कहीं प्रसार करने की आवश्यकता है। देश में सुपात्र के दान के अभाव में भयङ्कर परिणाम प्रति दिन सुरसा के मुंह की तरह या जंगल में लगी आग की तरह बड़ी तेजी से और बड़े व्यापक रूप में बढ़ते जा रहे हैं। आज हमारी इस संकुचित और कुमार्गगामी प्रवृत्ति के परिवर्तन की अविलम्ब आवश्यकता है। आइए! परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना करें कि—

'अदित्सन्तं दापयतु प्रजानन्।'

(अथ० ३ २० ८)

हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानने वाले हैं। अतएव हम में जो दान नहीं करता उसे निरन्तर दान करने की अधिकाधिक प्रेरणा प्रदान करें।

[गुरुकुल वार्षिक उत्सव पर वेद सम्मेलन में पढ़ा गया निबन्ध]।

★

चिकित्सा विज्ञान के हिन्दी पारिभाषिक शब्द

डा० सुरेन्द्रनाथ गुप्ता एम० बी० बी० एस०[1]

अवश्यम्भावी परिवर्तन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की दबी हुई आत्मा और स्वाभाविक प्रवृत्तियां पुनः जाग उठी हैं। देश को भारतीयता अंग्रेजी भाषा की दासता से उन्मुक्त हो चुकी है, अब शीघ्र ही उस की रही सही शृंखलायें भी टूटने वाली हैं। देश के प्रायः सभी विद्वानों और नेताओं का ध्यान राष्ट्रभाषा की समस्या की ओर गया और इस प्रश्न पर काफी गम्भीरता के साथ विचार किया गया। अंग्रेजी के स्थान पर किसी देशी भाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाने के प्रश्न पर प्रायः सभी एकमत हैं। केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् में प्रबल बहुमत द्वारा भारत के संविधान में हिन्दी ने अपना वह स्थान प्राप्त कर लिया है। प्रांतीयता तथा संकीर्ण साम्प्रदायिकता से परिचालित कुछ नेताओं का विरोध और उन की ढालमटोल नीति सत्य की गति को अधिक बन्द नहीं कर सकती। आज नहीं तो कल हमारे विश्वविद्यालयों और कालेजों में हिन्दी अपना वास्तविक स्थान ग्रहण करेगी। इस लिए दूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम इस अवश्यम्भावी परिवर्तन के लिये अभी से तैयारी कर चलें।

शुभ लक्षण

इस दिशा में सब से प्रमुख प्रश्न पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का है। इधर कुछ प्रांतीय सरकारें और कुछ गैरसरकारी संस्थायें इस ओर प्रयत्नशील हुई हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन तथा नागपुर के डाक्टर रघुवीर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उत्तरप्रदेशीय सरकार के विभिन्न विभाग भी अपना हिन्दीकरण करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। उत्तरप्रदेश का चिकित्सा तथा स्वास्थ्य विभाग भी तत्परता से काम कर रहा है। किन्तु खेद का विषय है कि विभिन्न मेडिकल कालेजों के प्रधानाध्यापकों की उदासीनता अभी भी अपने उसी रूप मे दिखाई पड़ रही है। उन की इस उदासीनता का कारण हिन्दी के प्रति उपेक्षा अथवा अंग्रेजी से विशेष प्रेम नहीं है, अपितु उन की अकर्मण्यता ही अधिक है। अब अपने बुढ़ापे में सहसा ये परिवर्तन करने की क्षमता वे अपने में नहीं पा रहे हैं और न उस के लिए प्रयत्न करना हो उन्हें अंगीकार है।

थोड़ी देर के लिए हम मान भी लें कि अभी चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा हिन्दी में नहीं दी जा सकती, फिर भी सर्वसाधारण जनता को उस के लिए आवश्यक साहित्य तो देना ही होगा और वह केवल हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में ही दिया जायेगा। इस लिए कम से कम इस के लिए चिकित्सा विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता तो है ही।

फिर भी पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के लिए जो कुछ हो रहा है, वह हमारी कर्मण्यता, जागरूकता और तत्परता का पर्याप्त द्योतक है। पर जल्दी में नशे की सी व्यग्रता से काम करने में जो हानि हो सकती है उसे भी सोच लेना आवश्यक है।

वर्तमान प्रयत्नों में कमी

पारिभाषिक शब्दों को गढ़ने के इन सभी प्रयत्नों में एक महत्वपूर्ण कमी दिखाई पड़ती है, जिसके कारण यह कार्य दोषपूर्ण और अधूरा होगा। प्रायः वे

[1] हिन्दी में चिकित्सा सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के लेखक, राजकीय चिकित्सालय में डॉक्टर हैं।

सभी ऐसे व्यक्तियों द्वारा हो रहे हैं जो हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी प्रभृति भाषाओं के पण्डित तो अवश्य हैं और शब्दों की खोज एवं उन के निर्माण का कार्य भी कुशलतापूर्वक कर सकते हैं, परन्तु जिस विषय के पारिभाषिक शब्द वे बनाने जा रहे हैं उस से नितान्त अनभिज्ञ हैं। अतः भाषा के इन विद्वानों से पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में भ्रान्तियां हो जाना बहुत सम्भव है।

पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति के आधारभूत सिद्धान्त

किसी भी आधुनिक भाषा और विज्ञान के पारिभाषिक शब्द किसी एक काल देश और स्कूल द्वारा ही निर्मित नहीं होते, अपितु उस विज्ञान की उन्नति और विकास के साथ-साथ विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न स्थान पर देश-देशान्तरों के विविध वैज्ञानिकों द्वारा रचे जाते हैं। इनकी रचना में इनके निर्माता की व्यक्तिगत रुचि, तत्सम्बन्धी घटना के इतिहास आदि का विशेष प्रभाव होता है। इस लिये पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति के आधारभूत सिद्धान्तों को शब्दों की सीमा से बांधा नहीं जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि प्रायः प्रत्येक पारिभाषिक शब्द का अपना इतिहास और उसकी रचना का अपना ही सिद्धान्त होता है। फिर भी कुछ स्थूल सिद्धान्त तो गिनाये ही जा सकते हैं।

१. बहुत से पारिभाषिक शब्द किसी विशेष ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर बनते हैं। ये ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देश, काल और व्यक्ति से सम्बन्धित हो सकती है अथवा उस पदार्थ विशेष या विषय के आविष्कार या अनुसन्धान सम्बन्धी किसी घटना को लेकर बनी हुई हो सकती है। 'सिनकोना', 'माल्टा फीवर', 'रॉकी माउन्टेन फीवर', 'क्यू फीवर', 'मदुरा फुट', 'एम बी ६६३' आदि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। कुनीन उत्पन्न करने वाले पेड़ का 'सिनकोना' नाम 'काउन्टेस सिनकोना' पीरू के स्पेन देशवासी काउन्ट सिनकोना की पत्नी के नाम पर रखा गया था। उसकी चिकित्सा के लिये इसका प्रयोग किया गया था।

२. बहुत से नाम और पारिभाषिक शब्द उस रोग, वस्तु विशेष अथवा क्रिया के किसी विशेष गुण या स्वभाव के द्योतक होते हैं। उदाहरणतः 'येलो फीवर', 'रिकेट्स' (अस्थिविकृति), 'ऑस्टियोमेलेशिया' (मृदुलास्थि), 'ऑस्टियोपोरोसिस' आदि।

३. तत्सम्बन्धी आविष्कार और अनुसन्धान करने वाले महान् वैज्ञानिकों के नाम पर भी अनेक पारिभाषिक शब्द बनाये जाते हैं। इस प्रकार के सहस्रों उदाहरण दिये जा सकते है।

४. कुछ शब्द किसी देश और काल विशेष की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भी बनते हैं। 'हाईजीन' और 'पेनेशिया' ऐसे ही शब्द हैं। ये दोनों शब्द दो यूनानी देवी देवताओं के नाम पर बने हैं।

५. बहुत सी औषधियों, द्रव्यों और रासायनिक पदार्थों के नाम उनकी उत्पत्ति के परिचायक होते हैं। जैसे कि 'पेनेसिलिन', 'स्ट्रेप्टोमाइसिन', 'ऑरियोमाइसिन', 'फोलिक एसिड' आदि।

६. अनेक रासायनिक द्रव्यों के नाम उन की रासायनिक रचना के आधार पर बनाये जाते हैं।

७ बहुत से शब्द ऐसे भी प्रयुक्त होते हैं जिन के नामकरण करते समय जो तत्सम्बन्धी धारणायें थीं और जिनके आधार पर वे नाम दिये गये थे, आगे चल कर वे ही धारणायें गलत साबित हुई और इस प्रकार उन पर आधारित पारिभाषिक शब्दों का मूल अभिप्राय भी गलत हो गया। पर क्योंकि लम्बी अवधि तक प्रयोग होने के पश्चात् सर्वसाधारण उस शब्द की उत्पत्ति के इतिहास और उस में निहित मूल अभिव्यक्ति को भूल कर केवल उस से इंगित होने वाले

रूढ़ीगत सच्चे भाव को ही समझने लगा और इस लिए वैज्ञानिक जगत अब भी ऐसे नामों का प्रयोग करता चला रहा है। 'मलेरिया' तथा 'विटामिन' ऐसे ही शब्द हैं। जब मलेरिया ज्वर का सही कारण विदित नहीं था तब यह समझ कर कि यह रोग दूषित वायु के कारण होता है, इसे मलेरिया कहा गया। विटामिन शब्द की व्याख्या हम आगे करेंगे

८. इन के अतिरिक्त अन्य अनेक सिद्धात भी हो सकते हैं, जिन की पूर्ण सूची गिनाना कठिन है। कभी कभी तो पारिभाषिक शब्दों की रचना करते समय अन्य सब बातें भूल कर अपनी सुविधा का ही ध्यान अधिक रक्खा जाता है। जैसे कि विभिन्न विटामिनों के नाम 'ए', 'बी', 'डी', 'ई', 'के' 'एम', 'जी', 'एच', 'पी', आदि। इन अक्षरों का प्रयोग किसी सिद्धात के आधार पर नहीं हुआ है। जैसे जैसे विटामिनों की खोज होती गई, वैज्ञानिक सुविधा की दृष्टि से अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों का प्रयोग उन के नामकरण के लिए होता गया। यदि आगे चल कर किसी विटामिन के अन्तर्गत विभिन्न प्रभेद पाये गये तो उस के नाम के आगे अंकों का प्रयोग कर के इन प्रभेदों का नामकरण भी कर दिया। जैसे कि, 'बी १', 'बी २', 'बी ३', 'बी ४', 'बी ५', 'बी ६', 'बी ७', आदि।

एक शब्द है 'डोपा' (DOPA)। यह छोटा सा नाम केवल सुविधा के दृष्टिकोण से इस पदार्थ के असली पूरे नाम का सकुचित रूप बना लिया गया है। इस पदार्थ का पूरा नाम है 'डिसओक्सी फिनाइल एलैनिन' (Desoxy Phenyl Alanin) कितना लम्बा और कठिन है। इस लिए इन चारों पदों के प्रारम्भिक अक्षरों को मिला कर यह छोटा सा सरल नाम बना लिया गया।

इस प्रकार इन शब्दों को बनाते समय सुविधा का ध्यान ही सर्वोपरि रक्खा गया है।

पारिभाषिक शब्दों की भाषा

आजकल जहा एक ओर हिन्दी के प्रति अदम्य उत्साह है वहां कुछ व्यक्तियों में इस की आलोचना एक फैशन बन गई है। इन्हीं व्यक्तियों का कहना है कि हिन्दी के पारिभाषिक शब्द कठिन बनाये जा रहे हैं। इन के अनुसार पारिभाषिक शब्दों की भाषा रोजमर्रा का हिन्दी होनी चाहिये। किन्तु रोज़-मर्रा का बालचाल में केवल दैनिक जीवन, आहार-विहार, व्यवसाय आदि सम्बन्धी छोटी मोटी बातों का ही काम चल सकता है। इस भाषा में 'भूख लग सकती है'; 'हाजत महसूस होती है' 'बुखार चढ़ता है', और 'दवा पी जाती है', पर सर्वसाधारण को वैज्ञानिक विषयों से दैनिक जीवन में कोई प्रयोजन नहीं होता। इसलिए इन के रोजमर्रा की भाषा मे शब्द भी नहीं हैं। केमिकल' के लिए था तो 'कीमीयावी' लिखना होगा अथवा 'रासायनिक' दोनों ही समान रूप से कठिन हैं 'क्वायटस' इन्टरप्टस' रोजमर्रा की बोल चाल की अंग्रेज़ी का शब्द नहीं है और न आसान ही है, तो फिर यदि इसके लिये 'विशृंखल मैथुन' लिखा जाय तो अनुचित न होगा।

पारिभाषिक शब्द बनाते समय एक विशेष ध्यान और रखना पड़ता है। वह यह कि शब्द या पद छोटा हो, तथा विभिन्न उपसर्गों और प्रत्ययों आदि के प्रयोग से उसी एक शब्द से अनेक सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द बनाये जा सकें। इस प्रकार स्वभावतः पारिभाषिक शब्दों में सन्धि और समास एव उपसर्ग और प्रत्यय का प्रयोग अनिवार्य है, और इसलिये रोजमर्रा की भाषा के स्थान पर मूल भाषा और व्याकरण का प्रयोग अपरिहार्य है।

अंग्रेजी के अधिकाश पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो लैटिन और ग्रीक भाषाओं (योरोप की मूल भाषायें)

से बने हैं, पर साधारण व्यक्ति इन्हें अंग्रेजी का मानता है और अब वास्तव में ये अंग्रेजी हो भी गये हैं, पर वे निश्चय ही रोजमर्रा की अंग्रेजी के नहीं हैं, और न वे सरल हैं। पर क्योंकि अब हम इनके अभ्यस्त हो गये हैं इस लिये वे कठिन नहीं मालूम होते, और क्योंकि संस्कृत जनित हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों से अभी हमारे कान अपरिचित हैं इसलिये वे अपेक्षाकृत सरल और कोमल होते हुये भी कठिन मालूम होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों के निर्माण करने के लिये मूल भाषा संस्कृत का प्रयोग अनिवार्य और अपरिहार्य है। हां, इसके अतिरिक्त विभिन्न जनपदीय भाषाओं में प्रचलित अनेक सुन्दर शब्द भी विद्यमान हैं, जिन्हें हम छोड़ नहीं सकते। इनके उदाहरण आगे दिये जायेंगे।

पारिभाषिक शब्दों के हिन्दीकरण की वर्तमान दशा

परिभाषिक शब्दों को बनाते समय आज कल सब से अधिक दूषित प्रवृत्ति प्रत्येक शब्द अथवा पद का अक्षरशः अनुवाद करने का प्रयत्न है। यहां हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि अनुवाद किया ही न जाये। पर मक्खी के स्थान पर मक्खी मार कर चिपकाना हास्यास्पद ही होगा। जिन अधिकांश शब्दों के अनुवाद से सुन्दर और उपयुक्त शब्द बन सकें, उनका अनुवाद तो करना ही चाहिये। 'रिकेट्स' के लिये 'अस्थिविकृति' और 'ऑस्टियोमेलेशिया' के लिये मृदुलास्थि बहुत सुन्दर उपयुक्त और समानार्थी अनुवादित शब्द हैं। 'अल्ट्रावायलेट रे' के लिये 'पराकासनी रश्मि' भी ठीक है। पर अनुवाद की इस प्रवृत्ति को अपनी मर्यादा नहीं लांघनी चाहिए। यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि अनुवादित शब्द उपयुक्त, शुद्ध और सुन्दर भी है या नहीं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

विटामिन शब्द से सर्वसाधारण परिचित हैं और उसमें निहित भावार्थ को भी अधिकांश व्यक्ति समझते हैं। प्रारम्भ में जब इन पदार्थों का पता लगा ही था और उनके बारे में कोई विशेष खोज नहीं हो पाई थी, तब लोगों का ध्यान था कि यह पदार्थ 'एमाइन' Amine वर्ग के हैं, और क्योंकि यह जीवन के लिये 'वाइटल' Vital आवश्यक पाये गये, इस लिये सन् १९१२ ई० में फङ्क Funk नामक वैज्ञानिक ने इनका नामकरण 'वाइटल' का अन्तिम अक्षर 'एल' हटा कर उसमें 'एमाइन' जोड़कर 'विटामाइन' Vitamine किया। परन्तु बाद की खोजों से यह सिद्ध हुआ कि यह धारणा कि यह सभी पदार्थ एमाइन' वर्ग के हैं मिथ्या है। इस भांति तब तो 'विटामाइन' ही बिलकुल गलत हो गया। परन्तु फिर भी इस शब्द के अन्त से केवल 'ई' हटाकर उसमें निहित भावार्थ के द्योतकस्वरूप उसे रहने दिया गया। इस भांति 'विटामिन' शब्द का इतिहास शब्दार्थ उसमें निहित भाव से सर्वदा भिन्न है।

अब यदि इस इतिहास को भुला कर हिन्दी में उसी भाव को इंगित करते समय वही गलती फिर दोहराई जाय तो क्षम्य नहीं हो सकती। बनारस आयुर्वेदिक कालेज के डाक्टर घाणेकर ने 'एमाइन' का हिन्दी अनुवाद 'तिक्ति' किया है और 'विटामाइन' तथा 'विटामिन' दोनों के लिये 'जीवतिक्ति' शब्द का प्रयोग किया है। इस भांति 'जीवतिक्ति' में पुनः वही गलती दोहराई गई है जो 'विटामाइन' में हुई थी। 'विटामाइन' शब्द सन् १९१२ में बनाया गया था और अब 'विटामिन' में निहित भाव इतना प्रचलित और सर्वविदित हो गया है कि प्रायः सभी लोग इस शब्द के शब्दार्थ को भूलकर उसके सच्चे भावार्थ के लिये ही इसका प्रयोग करने लगे हैं। 'जीवतिक्ति' में शब्दार्थ की ही गलती नहीं अपितु भावार्थ का भी अभाव है। —:०:—

संस्कृति के नवनिर्माण के लिए शिक्षालयों की रूपरेखा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती[1]

२० वीं शताब्दि के प्रारम्भ होते ही अमेरिका ने सभ्यता की समाधि में एक मुहरबन्द पत्र रख दिया है, जिस में आधुनिक मनुष्य के सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक कार्यों का रहस्य सुरक्षित है। यह निधि अभी मुद्रांकित है। वह अब से दो सहस्र वर्षों के पश्चात् ही उन्मुक्त की जायगी तथा मनुष्य को प्राप्त हो सकेगी। भावी विश्व के मानव के लिए वर्तमान मूल्यवान् सूचनाएँ तथा बातें सुरक्षित रखने की यह आधुनिक प्रणाली है। भौतिक-संस्कृति तथा मानसिक सूचनाएँ इस प्रकार सुरक्षित रह सकतीं हैं क्योंकि उन का विकास किसी सीमा तक ही हो सकता है और वे देश काल और परिच्छेद पर निभर रहती हैं।

मानवता के लिए इस से अभिमाननीय तथा महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य है, उस जाति की आध्यात्मिक (आन्तरिक मनोवैज्ञानिक) मूलभूत संस्कृति के आदर्शों के सारांश, ज्वलन्त आदेश, उत्साहप्रद तथा नवजीवन सञ्चारक विचार और सत्यासिद्धान्त, जो उस जाति के समुदाय ने जीवन में पूर्णता प्राप्त करने के उद्देश्य से अभ्युदयित किए थे। इस प्रकार जो अद्वितीय परम्परा प्राप्त होती है, वह उस जाति की अमूल्य सम्पत्ति है और वह सांस्कृतिक परम्परा उस देश के सर्वतोमुख अस्तित्व के लिए अत्यावश्यकीय है कालान्तर में प्रत्येक पीढ़ी का कर्तव्य तथा उस की पवित्र परम्परा हो जाती है कि वह शतियों तक उस अमूल्य निधि को सुरक्षित और अक्षुण्ण रखे।

भारत ने यह कार्य कैसे किया? भारतीय साम्राज्य के महासंकटों में भी किस प्रकार पतृक आदर्श सिद्धान्त अक्षुण्ण तथा जीवित रखे गए? इस का उत्तर हम तत्कालीन शिक्षा-संस्थाओं में पाते है, जिन्हें *आरण्य विश्वविद्यालय* की संज्ञा दी गई थी। भारत की प्रतिभा ने न तो प्रतिरोधी तत्वों को ही सम्मान दिया और न सिमेन्ट तथा पत्थर की समाधि के विचार को ही उचित समझा। उस के महामहिमशाली अतीत के तपस्वी आचार्यों ने, जो विश्व में आत्म विज्ञान के सर्वप्रथम वैज्ञानिक हुए, गुरुकुलवास की पद्धति हमें प्रदान की। प्राकृतिक अरण्य के शान्त दृश्यों के सुन्दर वातावरण में, उन तपस्वी आचार्यों ने अपनी शिक्षण पद्धति द्वारा ब्रह्मचारियों में (विद्यार्थी का तत्कालीन पर्याय) परम्परानुगत आदर्श तथा गौरवमय विचारों को स्थापित किया, जो सावधानतया सुरक्षित, अर्जित तथा प्रसारित कर दिये जाते थे। इस के अतिरिक्त वे उत्सुक नागरिक उन विचारों में पूर्णत तल्लीन रहते हुए व्यवहारत अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के कार्यों में सदा सफल और उत्तीर्ण रहे। उस प्रणाली में यही विशेषता था अत वे विचार बलशाली विचारों तथा जीवित आदर्शों के रूप में जीवित रहे।

भारतीय संस्कृति की स्थिरता की उस प्रणाली को प्रत्येक प्रकार के ज्माजागम जीवन तथा आर्थिक राजनैतिक नवनिर्माण की प्रणाली में ग्रथित किया गया। इस प्रकार हम हिन्दू समाज पद्धति के दो छोरों में पहुँचते हैं। एक तो ब्रह्मचारी पवित्र छात्र के रूप में सर्वतोमुख ज्ञान की प्राप्ति तथा निपुणता के लिए सतत प्रयत्नशील तथा दूसरा आदर्श गुरु, वीतराग और परम तपस्वी आचार्य।

अत• उन उज्ज्वल नेत्र ब्रह्मचारियों के विकासोन्मत मस्तिष्क तथा वीतराग आचार्यों के परम गम्भीर

[1] उत्तराखण्ड के एक साधक। अंग्रेजी में सौ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं।

हृदय, भारतमाता के सांस्कृतिक जीवन के अचल तथा युगानुजीवी स्मारक बन गए। ये दोनों विभाग हिन्दू समाज के प्रधान अंग हो गए। इस प्रकार यह निश्चित हो गया कि जब तक समाज जीवित रहेगा, तब तक यह प्राचीन ज्ञान तथा संस्कृति अस्त नहीं हो सकती। उन का सांस्कृतिक इतिहास सुरक्षित हो गया। यद्यपि समय प्रबल प्रवाह की भांति प्रवाहित होता गया, शताब्दियां भी व्यतीत होती गईं, तथापि ब्रह्मचारियों को यही शिक्षा मिलती रही कि माता, पिता, आचार्य और अतिथि तेरे लिए देवतुल्य पूज्य होवें। सत्य बोलना, धर्माचरण करना, इत्यादि······ और आज भी वे वीतराग तपस्वी गुरु इस पर ही व्यवहार तथा अनुभव करना चाहते हैं। अहिंसा, सत्य आत्म त्याग, आत्म बलिदान और एकता इस का एक पक्ष है। इस का दूसरा पक्ष भी है, जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस के ही समान महत्वपूर्ण है और जिस का ध्यान रखना हमें आवश्यकीय है।

समय व्यतीत होते ही महान् परिवर्तन हुए। एक बार हमारे समाज का आधार पूर्णतः आध्यात्मिक (आन्तरिक, अभौतिक) था, परन्तु अब आर्थिक-दृष्टिकोण को यह महत्व प्रदान किया गया। मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य भी परिवर्तित हो गया। आत्मपूर्णता और आत्मानुभव के स्थान पर अत्यन्त भौतिक समृद्धि तथा लौकिक सुख इस का लक्ष्य हो गया। इस का परिणाम यही हुआ कि अरण्यस्थ-पवित्र गुरुकुलों की पद्धति अप्रचलित हो गई······ क्योंकि इस का लक्ष्य ऐसी संस्कृति की रक्षा करना था, जो व्यावसायिक अथवा व्यापारिक मूल्यों से भी अधिक चिरस्थायी रहने वाले आधारों पर प्रतिष्ठित थी। क्रमशः विद्यार्थियों को इस बात की आवश्यकता आ पड़ी कि वे अपने को इस प्रकार से शिक्षित करें कि वे सांस्कृतिक-निर्माण के प्रतिनिधि होने के स्थान पर धन सञ्चय करने में समर्थ हों। अतः आर्थिक संस्कृति का उदय हुआ और तत्फलतः गुरुकुलों और तदस्थ ब्रह्मचारियों के अत्यन्ताभाव में उस प्रणाली का निर्माणकारी विभाग अस्त व्यस्त हो गया।

आधुनिक ब्रह्मचारी विश्वविद्यालयों तथा व्यापारिक संस्थाओं में स्थान पाने के लिए संघर्ष करते हैं। आधुनिक समस्या के भूत से पीड़ित होने के कारण आरण्य विद्यालय त्याग दिए गए। किन्तु इस का परिणाम क्या हुआ? छात्रों के मस्तिष्क निर्जीव अङ्क तथा आंकड़ों से परिपूर्ण हो गए। जब छात्र शिक्षण केन्द्रों से निकल कर, सामाजिक जीवन में प्रवेश करता है तो सञ्चित विश्वविद्यालयीय ज्ञान केवल नाम-मात्र के लिए उस में निलिप्त रहता है। आधुनिक विद्यापीठों के आचार्य तथा स्नातक वर्ग में गुरुकुल सम्पर्कजनित, जीवन को पलट देने वाली बौद्धिकता सर्वथा अनुपस्थित रहती है। परन्तु वे वैदिक तपस्वी आचार्य अपने सभी विद्यार्थियों का उचित मार्ग की ओर पथप्रदर्शन भी देते थे। गुरु का व्यक्तित्व (आचार-विचारादि) इन गुरुकुलों का एक आवश्यक अंग था तथा वे स्वयं विचारशील एवं उत्थान-परायण वातावरण को, समुचित अवस्था तथा अनुकूल परिस्थिति प्रदान करते थे, जिन में युवक छात्रों की प्रतिभा स्वाभाविकतापूर्वक विकसित हो सके और जो कुछ उसमें पवित्र उत्तम और श्रेष्ठ है, निर्बन्ध अभ्युदय को प्राप्त हो।

कहा जाता है कि इंग्लैंड के युद्ध ईटन की क्रीड़ा-भूमि पर विजित हुए। ऐसा सचमुच हुआ कि नहीं, हम कह नहीं सकते। किन्तु इस में सन्देह नहीं कि हमारी सांस्कृतिक विजय और उस विजय स्तम्भ का निर्माण भारत की सुरम्य-वन्यस्थलियों में हुआ, न कि रणक्षेत्रों में। उस का आदर्श अहिंसा की ही भूमि

पर पदस्थित रहा न कि नरसंहार पर। हमारी सभ्यता का अभ्युदय तथा विकास ऐसे स्थानों में हुआ, जहां उस के विकास में कोई बाधाएँ नहीं थी, जो प्रकृति की परम पवित्रता से सम्परिवेष्टित थे, जो आज के नगरों के समान कृत्रिम जीवन की धूर्तता तथा नैतिक पतन की दुर्वासना से—नाममात्र को शिक्षित समुदायान्तर्गत-भ्रष्टता तथा निर्लज्ज व्यवहार-परायणता से सुरक्षित और निर्लिप्त थे।

वहां छात्र कैसी शिक्षा पाते थे? वहां व्यवहारिक ज्ञान की शिक्षा मिलती थी, जहां आज एक कालेज का विद्यार्थी परीक्षा में अस्पष्ट उत्तर देने या प्रतियोगिता-मूलक परीक्षाओं में स्थान प्राप्त कर लेने की योग्यता भर ही रखता है। अतः छात्रों की संख्या का ही महत्त्व विस्तृत होता जा रहा है। जहां वह विद्यालयों में सर्वोच्च गुण सम्पन्न शिक्षा से विस्तृत, वातावरण की रचना के योग्य होकर, प्रतिभासम्पन्न, तर्क विवेक तथा न्यायशक्ति से सुदृढ़, आचरण में पवित्र, कार्यक्षम साहसी, बलवान् तथा आत्मनिर्भर निकलता था, वहां आज का विद्यार्थी-वातावरण किसी अमानुषिक कार्य की दृष्टि करता रहता है। देखिए, एक ही वस्तु के दोनों दृष्टिकोण में कितना भेद अतिव्याप्त है?

प्रश्न उठता है कि क्या अब आशा नहीं है? क्या वह आश्चर्यजनक-प्रणाली लुप्त हो गई? मैं कहूंगा कि नहीं, वह अब भी जीवित है। परन्तु हां, हमने समय के अनुकूल ही उसकी रूपरेखा को संवारना होगा। शान्ति निकेतन की विश्वभारती-सदृश शिक्षा संस्थाओं ने हमारे सांस्कृतिक-निर्माण के अङ्ग विशेष के विकास के हेतु अविस्मरणीय कार्य किया है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय-सदृश अल्पसंख्यक-शिक्षणस्थानों ने विद्यार्थी जीवन के आध्यात्मिक-आदर्शों को पूर्ण करने में तथा उन पूर्ण आदर्शों की व्यवहारिक कार्य पद्धति के रूप में संपरिणत करने का जो वर्चस्वतेजसमुज्ज्वल कार्य किया है, भारत उसका ऋणी तो होना ही चाहिए, अपितु उसके आदर्शों का अनुमार्गी भी होना ही चाहिए, क्योंकि इन्हीं-सदृश भारत के आश्रमस्थ-विद्यालयों ने भारत के सांस्कृतिक उत्तराधिकार को जीवित रखा है, जिस प्रकार मनुष्य-स्मृति किसी भी अमूल्य ज्ञान को आवश्यक-समय के लिए सुरक्षित रखती है, उसी प्रकार, यदि हमारे देश में ऐसे विद्यालयों का बहुमूल्य होवे तो जाति के उत्तराधिकार के अद्वितीय भाग को, जिसको हम संस्कृति कहते हैं, अक्षुण्ण बनाया जा सकेगा किसी भी जाति की प्रतिभा का वास्तविक मूल्य उसके व्यवहारों की सफलता द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है।

भारत का हृदय अभी भी जीवित है, जिसमें संस्कृति प्रगति स्पन्दित हो ही रही है। हमें दिन-प्रति-दिन इसी आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। कि किस प्रकार अपने देश की संस्कृति को वैदिक काल के स्वर्णयुग के समान दिगन्तोज्ज्वल कर दिया जाय। अभी एक प्रश्न है, जिसका उत्तर भारत के प्रत्येक व्यक्ति ने देना है, विशेषतः हमारे बालकों ने ब्रह्मचारियों ने, विद्यार्थीसमुदायेने, आगामी नागरिकों ने। उस उत्तर का स्वरूप भी निश्चित है, जो उनके जीवन चरित्र में अंकित की हुई विचार धारा के अनुसार ही निर्णीत किया जायेगा, क्योंकि यह अक्षरशः सत्य है कि जैसा बीज बोया जायगा, तदनुसार ही फल की प्राप्ति होवेगी। यदि शिक्षा के सुगठित-अङ्गों को व्यवहारिक-आचार और ज्ञान से सम्मिश्रित करेंगे तो कौनसी ऐसी शक्ति है, जो दुःखमय फल का निर्णय करेगी?

हां इतना और कि हम न तो प्राचीन परम्परा की अवहेलना ही करें और न केवल आधुनिक-विकाश-वाद को ही सराहें जहां हमारी प्राचीन-शिक्षा-प्रणाली हमें सच्चरित्रता, सत्यता, मैत्री, अरागद्वेषपरायणता,

शांति, उद्यमी और कर्मकौशल का उपदेश देती आई है, वहा आधुनिक शिक्षा पद्धति ने हमें या तो मिलों में कलर्क बनाया है, या सचिवालयों मे टाईपिस्ट, या विद्यालयों में अल्प वेतनभोगी दीन और कृश अध्यापक अथवा प्रधान। यह क्या मनुष्य जीवन के सच्चे सुख का लक्षण है? क्या किसी ने ऐसी अवस्था में सामाजिक-उत्थान की दीवार को खड़ी होते देखा है। मैं तो कहता हूँ कि इन परिस्थितियों ने हो हमारे विचारों कर्मों तथा समस्त जीवन के सांस्कृतिक सौन्दर्य को विकृत कर दिया है। हमारी आर्थिक कठिनाइयों के कारण ही तो हम सांस्कृतिक निर्माण में योग नहीं दे पाये। यदि हम विधानानुसार जैसा कि आदि से बतलाते आये हैं, इस राष्ट्रीय निर्माण में सहयोग देंगे तो आर्थिक अथवा सामाजिक-क्लेशों कठिनाइयों और दुर्विपाकों का अन्त हो सकेगा।

स्मरण रखो कि हमे कभी भी अपने देश की शिक्षण-पद्धति का तिरस्कार नहीं करना है। हमारा इस से यह तात्पर्य नहीं कि आप सीमित दृष्टिकोण वाले बनें, अथवा आधुनिक सभ्यता के मनुष्योपयोगी या सांस्कृत्युपयोगी उचित सिद्धांतों का त्याग कर दें। हम तो आप से यह कहना चाहते हैं कि आज परम्परा की सुदृढ़-आधारशिला पर अपनी वार्तमानिक शिक्षा प्रणाली की प्राण प्रतिष्ठा करें, जिस से अर्वाचीन और प्राचीन धर्म और व्यवहार, पदार्थ विज्ञान और आध्यात्मिक संस्कृति, मनुष्य और मनुष्य का मधुर समन्वय हो, जिस से हम भारतवासियों को अमेरिका की भांति सभ्यता की समाधि में अपने देश की सभ्यता और संस्कृति, सदाचार और सद्विचार और अन्यान्य श्रेष्ठतम मानवोचित निष्ठाओं को मुद्रांकित न करना पड़े। किन्तु हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि हम अपने देश के आध्यात्मिक-स्तर का, सद्विचार, सत्कर्म, सद्भाषण रूप गुणों को विश्वविद्यालयों की रूपरेखा में किंचिन्मात्र परिवर्तन कर तथा अन्य कलात्मक शिक्षा-केन्द्रों के सुन्दर और पवित्र मार्ग से उत्थान की ओर ले चलें और अपनी-अपनी निर्मल-जीवनचर्या द्वारा, अपनी-अपनी पारिवारिक संस्कृति को विमल करते हुए, अपनी वैदिक संस्कृति को अमर, सर्वव्यापक, सर्वतोमुख और सनातन कर दें।

★

गुरुकुल संग्रहालय हरिद्वार का सम्वत् २००८ का वार्षिक विवरण

श्री हरिदत्त वेदालंकार, एम. ए, मन्त्री गुरुकुल सग्रहालय।

सवत् २००८ में गुरुकुल सग्रहालय में अनेक नये विभाग स्थापित हुए तथा पुराने विभागों म महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

सिन्धु घाटी के दुर्लभ अवशेष

नये विभागो मे प्रागैतिहासिक युग का श्रीगणेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पाच हजार वष पुरानी मोहेंजोदड़ो तथा हड़प्पा की सभ्यता पर प्रकाश डालने वाल' मुहरों मिट्टी के खिलौनों पशु पक्षियों की मूर्तियों, मनकों चित्रित मृत्पात्रों सूत कातने की चकतियों आदि उ खनन म प्राप्त सामग्री से इस वर्ष सग्रहालय समृद्ध हुआ है। सिन्धु सभ्य । के प्रधान स्थानों के पश्चिमी पाकिस्तान में चले जाने से इस प्रकार के सग्रह देश म दुलभ हो गय हैं, अतएव इन का महत्त्व पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ गया है। ये हमारी प्राचीनतम अत्युन्नत सभ्यता के अव शेष हैं और इस प्रकार की दुष्प्राप्य सामग्री आ जाने से गुरुकुल सग्रहालय के गौरव मे वृद्धि हुई है।

ऐतिहासिक महापुरुषों के चित्र

इस वर्ष का दूसरा नया महत्वपूर्ण विभाग ऐतिहासिक महापुरुषों के प्रामाणिक चित्रों के सकलन का था। दुर्भाग्यवश अभी तक प्राचीन महापुरुषों के जो चित्र पाये जाते हैं वे प्राय काल्पनिक हैं इस विभाग में इस वष प्राचीन मूर्तियों सिक्कों और शबीह (छ व) चित्रों के आधार पर भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण भाग लेने वाले व्यक्तियों के चित्र तैयार कराये गये हैं। इन में गुप्तवश के सस्था क सम्राट् चन्द्र गुप्त, प्रसिद्ध दिग्विजयी समुद्रगुप्त (३४० ई०) महाराणा प्रताप, अहमद नगर की वीर सम्राज्ञी चाद

माहेञ्जोदड़ो की खुदाई से प्राप्त सामग्री

बीबी (१६०० ई०), सम्राट अकबर (१५५६-१६०५), प्रसिद्ध चीनी यात्री युआनच्वाग (६२६-६४५ ई०), गोस्वामी तुलसीदास, हरिदास नरसी मेहता, समर्थ गुरु रामदास के चित्र उल्लेखनीय है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल तथा श्री रायकृष्ण दास संचालक भारत कला भवन हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के सौजन्य से हमें ये चित्र प्राप्त हुए हैं, सग्रहालय एतदर्थ इन का आभारी है।

प्राचीन कला के चित्र

गत वर्ष भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के सचालक श्री माधो स्वरूप वत्स १६-८-५१ को गुरुकुल सग्रहालय के निरीक्षण के लिये पधारे वे इस के कार्य से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से सग्रहालय को भारतीय कला से सबद्ध २६ बडे फोटो भेट किये। इन मे माहेन्जादड़ो से वर्तमान युग तक की अमरावती, मथुरा, अजन्ता, भुवनेश्वर आदि सभी प्रधान कला शैलियों के सुन्दर उदाहरण हैं। सग्रहालय इस के लिये श्री वत्स का तथा पुरातत्व विभाग का ऋणी है।

मध्य भारत ग्वालियर के पुरातत्व विभाग के सचालक श्री पाठक के सौजन्य से गुरुकुल सग्रहालय को गत वर्ष की भाति बहुमूल्य सहायता प्राप्त हुई।

उन्होंने इस वर्ष मध्य भारत के महत्वपूर्ण शिला लेखों की छापे प्रदान करने के अतिरिक्त मध्य भारत के खम्बाबा, मान मन्दिर, गूजरी महल आदि पुरातत्वीय अवशेषों तथा मन्दिरों के बडे साइज के फोटो भेजने की कृपा की है।

गत वर्ष सग्रहालय के मूर्ति तथा मुद्रा विभाग में भी वृद्धि हुई। मूर्ति विभाग में हारिती आदि अनेक कुशाण और गुप्तकालीन नई मूर्तिया आई तथा कुछ प्रस्तर खण्ड प्रेम नगर देहरादून से प्राप्त हुए। मुद्राओं म मुगल बादशाहों के ताम्बे के दस सिक्के श्री ब्रजमोहन व्यास ऐग्जीक्यूटिव आफिसर बनारस हिन्दू यूनवर्सिटी के सौजन्य से प्राप्त हुए बाबर, हुमायू, अकबर, शाहजहा, जहागीर, और गजेब की रुपये की मुहरों के नमूने भी तैयार कराये गये। इन में जहागीर की राशि चक्र सम्बन्धी मुहरें विशेष रूप से दर्शनीय हैं। कागड़ा शैली के कुछ नये चित्र भी संग्रहालय को प्राप्त हुए हैं, भारत के नये पुरातत्वीय और ऐतिहासिक मानचित्रों से सग्रहालय की उपयोगिता और शोभा बहुत बढ गई है।

नागरिक शिक्षा के २० चित्र दर्शकों का अपने कर्तव्यों का बोध कराने के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

डा० शिवनाथ राय के अनथक उद्योग से न केवल नई मूर्तिया और सिक्के मिले हैं किन्तु डाक तथा अदालती टिकटों का सग्रह साढे तीन हजार तक पहुँच गया है।

स्वामी दयानन्द के पत्र

इस वर्ष की हस्तलिखित सामग्री मे श्री मामराज आर्य, खतौली के सौजन्य से प्राप्त स्वामी दयानन्द के कुछ हस्तलिखित पत्र हैं। इन मे से एक पत्र द्वारा स्वामी जी के हरिद्वार में ठहरने के स्थान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

वैज्ञानिक सामग्री

वन्य अनुसन्धानशाला (फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट) देहरादून के सौजन्य से हमें इस वर्ष कुछ वानस्पतिक सामग्री प्राप्त हुई है। इस में बास और भाभड़ घास से कागज बनाने की तथा एक विशेष प्रकार की तुलसी से कपूर बनाने की प्रक्रिया समझाई गई है, भारतीय वनों की प्रसिद्ध इमारती लकड़िया के तथा विविध लकड़ियों से बनाये गये प्लाईवुड के नमूने हैं, इन के लिये सग्रहालय वन्य

अनुसंधानशाला के प्रकाशन एवं सर्वेक्षण अधिकारी श्रीयुत अग्रवाल का आभारी है।

लखनऊ विश्वविद्यालय की कृपा से संग्रहालय को इस वर्ष भूगर्भ विज्ञान सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण सामग्री मिली है। इसमें विभिन्न प्रकार की चट्टानों खानजों तथा लाखों बरस पुराने जन्तु तथा पेड़ों के प्रस्तरीभूत अवशेषों का एक उपयोगी प्रतिनिधि संग्रह है। इस संग्रह के लिये हम लखनऊ विश्वविद्यालय के भूगर्भ विभाग के अध्यक्ष श्री एस आर ... तथा डा० रमराच द्र मिश्र के विशेषरूप से आभारी हैं जिनके सौजन्य से यह बहुमूल्य संग्रह प्राप्त हुआ है और जिन्होंने इस शिक्षा की दृष्टि से उपयोगी बनने में बहुत प्रयत्न किया है।

हिमाचल विभाग

गत वर्ष हरिद्वार और उत्तराखण्ड के लोकजीवन से सम्बद्ध वस्तुओं के संग्रह करने की दृष्टि से यह विभाग प्रारम्भ किया गया है। देहरादून जिले का जौनसार बावर का प्रदेश एक विशिष्ट संस्कृति का पोषक है। इस वर्ष इस प्रदेश की कुछ पाप निवारक मूर्तियां संगृहीत की गयीं। इस की पैदावार, रहन सहन, अन्य धार्मिक-आर्थिक और सामाजिक जीवन अन्य प्रदेशों से नितान्त भिन्न है। इन के कई प्रकार के अन्न पुराने बर्तन तथा लकड़ियां संग्रहालय में आये। श्री रामेश बेदी के सौजन्य से हमें ये वस्तुएं प्राप्त हुई हैं तदर्थ हम उन के आभारी हैं। श्री धर्मदेव शास्त्री दर्शन केसरी की कृपा से जौनसार निवासियों के घर का एक नमूना मिला है।

५० वर्ष पुराना अनाज नापने का पात्र

मान्य दर्शक

इस वर्ष संग्रहालय देखने के लिये अनेक माननीय दर्शकों का शुभ आगमन हुआ। इनमें श्री माधोस्वरूप जी वत्स डायरेक्टर जनरल आफ आर्किलोजी भारत सरकार नई दिल्ली इस वर्ष के प्राच्य परिषद् के अध्यक्ष श्रीयुत नीलकण्ठ शास्त्री श्रीयुत कृष्णदत्त वाजपेयी पुरातत्व अधिकारी उत्तर प्रदेश सुप्रीम कोर्ट नई दिल्ली के विचारपति श्री विजन कुमार मुखोपाध्याय बम्बई सरकार के आयुर्वेद इन रिसर्च ब्यूरो के प्रधान श्री म्हसकर पुदुदुकोट्टई के पूर्व शिक्षाधिकारी श्री वेंकटरमन सौराष्ट्र सरकार के शिक्षा संचालक माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त रसद मन्त्री उत्तर प्रदेश उल्लेखनीय हैं। इन सब ने संग्रहालय के कार्य से प्रसन्नता प्रकट की।
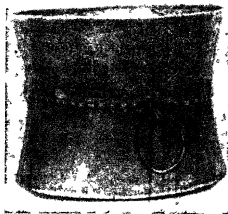
लोक शिक्षण का केन्द्र

उपर्युक्त माननीय अतिथियों के अतिरिक्त हरिद्वार के पावन तीर्थ में हजारों यात्रियों ने इस संग्रहालय से अपनी प्राचीन संस्कृति और वैज्ञानिक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। यह संग्रहालय शनैः शनैः इस प्रदेश में लोकशिक्षण का महत्वपूर्ण केन्द्र बन रहा है।

१९५१ में दर्शकों की संख्या १८६०० तथा जन

वरी १६५२ से ३१ अप्रैल १६५२ तक ८७५२ थी। यह संख्या वेद मन्दिर की दर्शक पत्रिका में हस्ताक्षर देने वालों की है। संग्रहालय में आने वाले सैंकड़ों अशिक्षित हस्ताक्षर करना नहीं जानते और शिक्षित अपना नाम अंकित करना भूल जाते हैं। यदि इन्हें भी सम्मिलित कर लिया जाये तो यह संख्या क्रमशः बीस और दस हजार होगी। इस तरह गुरुकुल संग्रहालय (वेद मन्दिर) से लाभ उठाने वालों की संख्या ३० हजार है और लगभग इतनी ही संख्या ने आयुर्वेद महाविद्यालय में अवस्थित वैज्ञानिक संग्रहालय से लाभ उठाया है। इस प्रकार गुरुकुल संग्रहालय से ६० हजार दर्शकों का लोकशिक्षण तथा ज्ञानवर्धन हुआ है। ये भारत के सभी प्रान्तों से आने वाले थे।

भावी कार्यक्रम

उत्तर प्रदेश के इस क्षेत्र में पुरातत्वीय अनुसन्धान तथा लोकशिक्षण का कार्य करने वाला यही एकमात्र संग्रहालय है इस प्रदेश के अनेक अवशेष खुदाई की बाट जोह रहे हैं, यह कार्य व्यय साध्य है। यह प्रसन्नता की बात है कि उत्तर प्रदेश की सरकार से इस संग्रहालय को गत दो वर्षों से सहायता मिल रही है, इस के लिये हम उन के आभारी हैं किन्तु इस प्रदेश के सांस्कृतिक महत्व एवं अन्वेषण कार्य की गुरुता देखते हुए यह राशि बहुत अल्प है। आशा है इस वर्ष संग्रहालय को अपने कार्यों के लिये सरकार से यथेष्ट अनुदान प्राप्त होगा।

आभार प्रदर्शन

इस वर्ष संग्रहालय के कार्य में विविध रूपों में श्री दीनदयालु शास्त्री एम एल ए, डा० शिवनाथ राय, श्रीयुत रामेश बेदी, श्री कृष्णदत्त वाजपेयी श्रीयुत मदनमोहन नागर, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री सतीशचन्द्र काला, श्रीयुत ब्रजमोहन व्यास, श्रीयुत राय कृष्णदास, श्रीयुत माधोस्वरूप वत्स श्रीयुत रमेशचन्द्र मिश्र श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार से बहुमूल्य सहायता और सहयोग मिला है। संग्रहालय इन सब का आभारी है और उसे यह आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि भविष्य में भी ये महानुभाव अपने बहुमूल्य सहयोग से संग्रहालय की उन्नति में सहायक सिद्ध होंगे।

★

महात्मा बुद्ध की यह मूर्ति इस वर्ष ही संग्रहालय में आई है।

भोजन में इमली के बीज

डॉक्टर पी० एम० राव[1]

सरकार के 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के होने पर भी भारत की खाद्य स्थिति सन्तोषजनक नहीं और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में शायद भारत को अभी कितने ही वर्ष और लगेंगे। पिछले कुछ वर्षों से सरकार विदेशों से खाद्यान्न मगाने में करोड़ों रुपये व्यय कर रही है। इस लिए केवल यह आवश्यक नहीं है कि दैनिक प्रयोग में आने वाले खाद्य पदार्थों को अधिक मात्रा में उपजाया जाय। वरन् सहायक खाद्य सामग्रियों की भी खोज की जाय, जो संकट काल में काम आ सकें। ऐसे खाद्य पदार्थों की खोज में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

(१) वह पदार्थ बहुलता से प्राप्त हो, (२) वह संग्रह में सुलभ हो, (३) वह प्रायः न खाया जाने वाला पदार्थ हो तथा और किसी प्रयोग में न आता हो, (४) उसे खाये जाने योग्य पदार्थों में परिवर्तन करने में अधिक परिश्रम तथा धन व्यय न हो।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए तथा इस बात को भली भांति जानते हुए कि प्राचीन काल में साधु सन्यासी अपने जीवनयापन की सभी वस्तुयें इस देश की जंगली उपजों से प्राप्त करते रहे हैं, कुछ जंगली वस्तुओं तथा तत्सम्बन्धित पदार्थों का जो कि वर्तमान काल में व्यर्थ पड़ी रहती हैं या जिनका अभी पूर्णतया उपयोग नहीं होता है, परीक्षण वन अनुसंधान शाला के रासायनिक प्रयोगशाला में किया गया है। इस परीक्षण द्वारा यह पता चला है कि अन्य पदार्थों के अतिरिक्त इमली के बीज की गिरी एक ऐसा पदार्थ है, जिस से सन्तोषजनक सहायक खाद्य पदार्थ बन सकने की आशा है।

इमली का बीज, जो कि इमली के वृक्ष की उपज है दक्षिणी भारत में अधिकतर पाया जाता है, इमली के गूदे के व्यवसाय में एक बची-खुची वस्तु के रूप में प्राप्त हो जाता है। इमली के बीज में घना भूरापन लिये लाल रंग का बाहरी छिलका और मलाई के समान भीतरी गिरी रहती है। इस गिरी का विश्लेषण भिन्न २ वैज्ञानिकों ने भिन्न २ प्रकार से किया है। यह भिन्नता शायद ऋतु, जलवायु तथा स्थान भेद के कारण हो, परन्तु इस की आदर्शभूत बनावट निम्न है—

नमी या आर्द्रता	१०.२%
तैल	६.४%
टनिनस्	१.६%
अन्नमयकोष्टक	१५.४%
कच्चा रेशा	२.०%
स्वतंत्र शर्करा	२.६%
बिना रेशे के कर्बोदित जिनमें स्वतन्त्र शर्करा न हो	५८.५%
अप्रागारिक पदार्थ (भिन्नता से)	३.०%
राख	२.५%

इस संयोजन का चूर्ण निम्नलिखित विधि से किया जा सकता है—

बीजों को इमली के गूदे से पृथक करके, लिपटा हुआ गुदा (यदि हो) दूर करने के लिये किसी बड़े बर्तन में पानी द्वारा अच्छी प्रकार धोया जाता है। इस प्रक्रिया से कीडों द्वारा खाये हुए खोखले बीज पानी में तैरने लगते हैं और अच्छे बीज नीचे तली (पेंदी) में बैठ जाते हैं। अच्छे बीजों को खराब बीजों से अलग कर और निथार कर भली प्रकार धूप में सुखाया जाता है। यदि उन्हें कुछ समय के लिये संचय करना हो तो उन्हें शुष्क स्थान में रखा जाता है और कीड़ों द्वारा हानि बचाने से कभी-कभी बरसात में समफर डाइ-ऑक्साइड का धुंआ भी दिया जाता है।

[1] वन अनुसन्धानशाला, देहरादून में अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं।

अन्यथा उन्हें लगभग आध घंटे तक गर्म बालू के ऊपर या खाई तापवाली गर्म कोठरी में १४५ से १५० डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम तक भूना जाता है। भुने हुये बीजों को छिलका अलग करने के लिये लकड़ी की मूगरी से हल्के २ पीटते हैं या छिलका उतारने के यन्त्र में रखते हैं। छिलका अलग करने के लिये भूनने के अतिरिक्त दूसरी विधि यह है कि बीजों को पानी में एक या अधिक दिन भिगोया जाता है, तत्पश्चात् एक घंटे तक उन्हें उबाला जाता है और बादाम की गिरी की तरह छिलका दूर कर दिया जाता है। तब मलाई सी श्वेत गिरी को ठंडे पानी में धोये जाने के बाद ३ या ४ घंटे तक ०.५ प्रतिशत सलफर डाइ-ऑक्साइड के घोल में भिगोया जाता है। यह सूखी हुई गिरिया या तो गर्म पानी के यन्त्र में या गर्म कोठरी में जब तक उनकी आर्द्रता दाह कर ५ प्रतिशत न हो जाय सुखाई जाती हैं। इस क्रिया में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि गिरियों का रंग न उड जाय। ये सूखी गिरिया तब कूटी जाती हैं और पीस कर उनका चूर्ण कर लिया जाता है

यह चूर्ण जिसे टी० के० पी० (इमली के गिरियों का चूर्ण) कहा जाता है प्रयोग द्वारा सूती व जूट के कपड़े में सरेस लगाने में प्राय: २०००० टन प्रति वर्ष उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार ४०००० टन अन्न मनुष्यों के लिये बच जाता है, अन्यथा यह सूत बुनने के व्यवसाय में २०००० टन स्टार्च बनाने में लग जाता। इस समय टी० के० पी० इस व्यवसाय की आवश्यकता का कुल ४० प्रतिशत है और इसका कारण शायद कुछ सीमा तक इस चूर्ण का मन्द पीला रंग होना तथा अधिकतर टी० के० पी० के प्रयोग के प्रति मिल मालिकों का द्वेष भाव तथा स्टार्च बनाने वालों का निजी स्वार्थ है। इस चूर्ण में २५ प्रतिशत अन्न का श्वेतसार मिला कर बहुत सुधार किया जा सकता है। टी० के० पी० या इस से बनाये पदार्थ बुनने के व्यवसाय में सारे श्वेतसार जो कि सरेस का काम देता है स्थान ले ले, तो इस से कम से कम ७५००० टन अन्न की बचत मनुष्य उपयोग के लिये हो सकती है, जो कि इस अन्न संकटकाल में कम सहायता नहीं है। यह अब सरकार तथा व्यवसाइयों का कर्तव्य है कि तनिक सा भी अन्न श्वेतसार बनाने के व्यवसाय में प्रयोग न हो क्योंकि इन के स्थान पर टी० के० पी० अच्छी प्रकार काम दे सकता है। इसके लिये प्रचार की आवश्यकता है। यद्यपि टी० के० पी० ८ वर्ष पुरानी हो चुकी है, तो भी यह उपज नियोजकों के लिये बिल्कुल नई सी है और वे इसका उपयोग स्वेच्छा से नहीं करते। अतएव केवल प्रचार से ही काम न चलेगा इसके साथ सरकार के शासन विभाग द्वारा कार्यान्वित कराने की भी आवश्यकता है, जोकि मिल मालिकों के लिये टी० के० पी० का कम से कम ७५ प्रतिशत उपयोग अनिवार्य बना दे।

इमली के बीज द्वारा खाद्य प्रश्न को हल करने में इस अप्रत्यक्ष उपयोग के अतिरिक्त प्रत्यक्ष सहायता भी मिल सकती है इसकी गिरिया दक्षिणी भारत में अन्न संकट और अकाल के दिनों में गरीबों द्वारा खाई जाती हैं। साधारण काल में ये अन्य लोगों द्वारा भी खाई जाती हैं। कोचीन, ट्रावनकोर और उनके पड़ोसी प्रदेशों में मूंगफली की तरह खाई जाती हैं। उत्तरी भारत में भी जहां इमली अधिक उत्पन्न नहीं होती सूचना मिली है कि कुछ लोग गिरी के आटे में घी और चीनी मिला कर जाड़ों में खाने के लिये लड्डू बनाते हैं। ये लड्डू बड़े स्वादिष्ट और पौष्टिक बताये जाते हैं। यह और पता चला है कि इसका चूर्ण कुछ कारखानों में बिस्कुट बनाने में भी काम आ रहा है। इसे चने के आटे के साथ मिला कर पकौड़ियां आदि बनाने के काम में भी लाते हैं। यद्यपि गिरी के चूर्ण

के विश्लेषण से यह पता नहीं चलता कि इसमें कोई विषैला पदार्थ है तथापि यह कहा जाता है कि अगर यह भली प्रकार न बनाया जाय और अकेले ही खाया जाय तो इस से कब्ज तथा सन्ताप हो सकता है। दूसरी ओर यह बीज दवाइयों के काम भी आता है। इसका चूर्ण आयुर्वेद द्वारा गठिया में तथा यूनानियों द्वारा दुलमिचि नामक रोग में दिया जाता है। यह भूख बढ़ाने के काम में भी आता है, इस लिये सुझाव है कि सरकार इसकी गिरियों की पौष्टिक तथा मादकत्व दृष्टि से परीक्षा कराये। यदि इसमें कोई विषैला प्रभाव न हो तो इसे गेहूँ के आटे में मिला कर चपातियां, रोटियां, हलवा या अन्य खाद्य पदार्थ बनाने में उपयोग किया जाय। यदि यह ठीक विधि से बनाया जाय तो यह एक अत्युत्तम सहायक खाद्य पदार्थ सिद्ध हो सकता है, इस की अन्न मात्रा गेहूं, मक्का तथा अन्य खाद्य पदार्थों के साथ निम्न सूची के अनुसार भली प्रकार तुलनीय है। तुलना के लिये अन्य खाद्यकों की तालिका भी सम्मिलित कर ली गई है।

टी० के० पी तथा अन्य खाद्य पदार्थों का विश्लेषण

[यह तालिका पदार्थों के आद्र'ता विहीन आधार पर दी गई है]

	अन्नमय कोष्ठक प्रतिशत	वसा प्रतिशत	कर्बोदित प्रतिशत	कच्चा रेशा प्रतिशत	राख प्रतिशत
टी०के०पी०	१५.४०—२०.१२	३.८६—७.९८	६८.०१ ६६.३७	०.७३—८.१३	२.४५—३.२८
गेहू	१०.३२—२०.२७	१.६६—२.७८	६०.७४—८५.४०	२.३६—१४.७६	१.४०—६.०८
चावल	६.१२—१०.४८	०.२२—०.८३	८४.१६—९६.९०	०.२२—०.४८	०.४५—०.७१
मक्का	९.०२—११.६३	४.४२—७.०९	७७.९६—७९.९५	१.५९—३.३२	१.४६—२.२५
जौ	८.३४—१२.९६	१'५८—२ ७४	७७.२१—७८.३५	४.२८—५.५५	२.५०—३.२०
जई	३.५९—१७.३७	४.०७—७.७७	६२.१०—७२.८१	०.९७—४.०९	२.४६—८.२२

टी० के० पी० का चारे के रूप में व्यवहार करने की परीक्षा पशु सम्बन्धी अनुसन्धानशाला आइजत नगर में की जा चुकी है। यह सिद्ध हो चुका है कि इससे प्राप्त कर्बोदित और खानिजादि अणु की मात्रा जई तथा चने से भली प्रकार तुलनीय है तथा इसका कच्चा तन्तुसर जौ, जई तथा मक्का से कहीं अधिक है।

खाद्य	कच्चे तन्तुसर	ईथर से निकला तत्व	कच्चा रेशा	नत्रजन रहित सत्व	कुल कर्बोदित	कुल राख	चूना	स्फुर
टी० के० पी०	१५.४	३.८९	८.१७	६६.२६	७७.४३	३.२८	०.४३	०.५३
जौ	११.५	१ ०६	५.३६	७८.८४	८४.५३	३ ११	०.२५	०.८५
जई	१०.०७	६.५५	१२.७१	६५.८८	७८.५९	४.७९	०.१६	०.९३
मक्का	१०.५५	३.३०	२.२०	८२.१०	८४.३०	१.८५	०.०७	०.९८
चना	१९.६३	४.८४	७.५०	६५.४०	७२.९०	२.६३	० ४३	०.९८

बैलों पर अधिक समय तक इस चारे की परीक्षा करने पर यह पता चला है कि इसका कोई निकृष्ट प्रभाव नहीं होता, परन्तु इससे जानवर का विकास होता है तथा भार बढ़ता है। इस लिये यह सुझाव रखा जाता है कि यह लाभदायक सिद्ध हो सकता है और कुल चारे का एक तिहाई भाग बन सकता है।

—अनुवादक श्री रमेशचन्द्र नैथानी।

★

प्रामाणिक हिन्दी कोश[1]

श्री रामेश बेदी

श्री वर्मा ने हिन्दी शब्द सागर जैसे महान् कोशों के सकलन में अथक कार्य किया था। उन दिनों हिन्दी में कोश निर्माण का कार्य प्राय: नई बात थी। इस लिए उस कोश में बहुत सी त्रुटियां रह गई थीं। श्री वर्मा जी ने अपने पुराने साथियों, स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि के कोश सम्बन्धी ज्ञान का और अपने निजू अनुभव का लाभ उठा कर यह नया प्रामाणिक कोश रचा है। इसमें शब्दों की कुल सख्या ४५८२६ है। नये सस्करण को श्री वर्मा ने अधिक उपयोगी तथा प्रामाणिक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। फिर भी अनेक कमियां रह गई हैं। कुछ का ध्यान हम यहां खींचना चाहते हैं। चिटकनी दैनिक व्यवहार का शब्द है परन्तु इस कोश मे हमें नहीं मिला। राजों और मिस्त्रियों के दैनिक व्यवहार के अनेक शब्द जैसे 'जाली छवाम', 'जाली बदरूम' मन्दिरों के शिखरों की फाड़ीदार रचना आवला', 'कमरखी आवला' आदि शब्द हमें इस कोश में नहीं मिले। फणधर और फणी शब्दों का अर्थ 'साप' दिया है। हमारी सम्मति में ये दोनों शब्द सामान्य सर्पवाची नहीं हैं, 'फन वाले सापों' के लिए हैं। फन वाले साप के लिए हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला प्रसिद्ध शब्द 'फनियर' या 'फनिहर' इस में नहीं मिलता। गर्मियों में चाव से खाये जाने वाला खट-मिट्ठा फल 'प्याल' इस में नहीं है।

गांव वाले अपनी आवश्यकतानुसार हिन्दी के सरल और ठीक भाव प्रकट करने वाले शब्द बना लेते हैं। उन के दैनिक जीवन में वे शब्द रम गये हैं। उत्तर प्रदेश में प्रचलित इस प्रकार के शब्दों को श्रीयुत क्रक ने सगृहीत किया था। यद्यपि वह कार्य अधूरा है परन्तु उपयोगी है। उस के बाद बिहार के किसान जीवन के शब्दों का अच्छा सग्रह ग्रियर्सन की पुस्तक (बिहार पेजेण्ट लाइफ) में मिल जाता है। हम श्री वर्मा से निवेदन करेंगे कि इस प्रकार की रच नाओं को भी देख लें जिस से अगले सस्करण में लोक जीवन से सम्बन्धित हजारों शब्दों का समावेश किया जा सके। कोश का उपयोग करने वालों से भी हम निवेदन करेंगे कि उन्हें जो त्रुटियां दृष्टिगोचर हों वे श्री वर्मा को अवश्य लिख भेजें। अकेले व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं कि वह ज्ञान विज्ञान की समस्त शाखाओं के शब्दों का भलीभांत ज्ञान रखता हो। कोश को अधिक विस्तृत तथा प्रामाणिक बनाने के लिए पाठकों का जितना अधिक सहयोग प्राप्त हो सके उत्तम है।

दूसरे सस्करण की मुख्य विशेषता यह है कि इस में प्राचीन और आधुनिक कवियों द्वारा प्रयुक्त कोई दस हजार ऐसे नये शब्द, प्रयोग, मुहावरे, उदाहरण आदि बढ़ाये गये हैं जो अब तक हिन्दी के किसी शब्द कोष में नहीं मिलते। गत दो वर्षों में भिन्न भिन्न भारतीय राज्यों और राजकीय विभागों के दैनिक कार्य सञ्चालन के लिए जो हजारों नये शब्द बने और समाचार पत्रों में जो नये-नये शब्द प्रचलित हुए हैं वे इस में सम्मिलित कर लिए गये हैं। अन्त में पाच हजार प्रसिद्ध और नित्य काम आने वाले अग्रेजी शब्द और उन के हिन्दी में अर्थ दिये हैं।

कोश-कला की दृष्टि से हमारी समझ में यह हिन्दी का उत्कृष्ट कोश है। शब्दों की व्याख्या अर्थ, विवरण तथा निष्पत्ति शुद्ध और स्पष्ट हैं। राजकीय तथा निजू कार्यालयों में समाचार-पत्र कार्यालयों में और शिक्षा-सस्था तथा पुस्तकालयों में यह कोश अवश्य रहना चाहिए। ★

---

१ सम्पादक श्री रामचन्द्र वर्मा। प्रकाशक साहित्य-रत्न माला कार्यालय, २० धर्म कूप, बनारस। दूसरा सस्करण, २००८। आकार १८×२२/८, पृष्ठ सख्या १६१६, सजिल्द, मूल्य १२॥)।

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

जुलाई मास प्रारम्भ होते ही कुल पर मेघ राजा की मेहर प्रारम्भ हो गई है। दूसरे-तीसरे दिन वर्षा होता रहता है। अन्तरिक्ष का जल गिरते ही वन, बाग और खेतियां लहलहा उठी हैं। ताल-तलैयाँ और नदी-नाले मचल उठे हैं इस साल आमों का अकाल रहा। हां जामुनों के कारण कुल-उपवन की जम्बू-वीथियाँ छोटे ब्रह्मचारियों के अभियानों और क्रीड़ा कल्लोल से गूंजती रहीं। पावस की रौनक के कारण कुलभूमि में सर्वत्र आमोद और उल्लास छा रहा है। गुरुकुल की धान की खेतियां पनप रही है। चातक और कोयल आदि वन पक्षियों के कलरवों से वातावरण और भी अधिक आह्लादकारी बना रहता है। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

नवीन सत्र

दीर्घावकाश समाप्त होते ही १६ जुलाई से गुरुकुल के तीनों महाविद्यालयों तथा विद्यालय की पढ़ाई नियमित रूप से प्रारम्भ हो गई है। तीस जुलाई से उपसत्र परीक्षा प्रारम्भ होगी।

छुट्टियों में यात्राएँ

दीर्घावकाश में महाविद्यालय के छात्रों की दो मण्डलियाँ काश्मीर यात्रा पर गई थीं। उन्होंने वहाँ के सभी दर्शनीय और महत्वपूर्ण स्थानों का अवलोकन किया। इन में से एक मंडली लौटते हुए कुल्लू घाटी की यात्रा के लिए भी गई थी। विद्यालय के ब्रह्मचारी अपने गुरुजनों सहित चकरौता के स्वास्थ्यप्रद स्थान पर एक महीने तक रहे। उन्होंने समीपस्थ अनेक पर्वतीय स्थानों का परिभ्रमण कर के स्वास्थ्य-लाभ किया।

श्री उपाचार्य जी की विदाई

तैंतीस वर्ष की सतत सेवा के पश्चात् गुरुकुल विश्वविद्यालय के आँग्ल-साहित्य के उपाध्याय और उपाचार्य श्री प्रो० लालचन्द्र जी ने अपना कार्य-काल समाप्त कर के कुल से विदाई ली। इस तिहाई शती के कार्यकाल में मान्य प्रोफेसर जी ने अपनी योग्यता, विद्वत्ता, सरलता, साधुता और सुचरित्रता से कुल-वासियों को अपना वशवद बना लिया था। ब्रह्मचारियों के चरित्र-निर्माण के विषय में तो आपने अद्भुत योगदान दिया है। १७ जुलाई को आपकी विदाई की कुल सभा में कुल के उपाध्यायों और ब्रह्मचारियों ने आप के स्नेह, वात्सल्य, औदार्य, सदाप्रफुल्लता, साधकवृत्त, अध्ययनशीलता, जिन्दादिली और कार्यनिष्ठा आदि प्रोज्ज्वल गुणों के प्रति अपनी भाव-पुष्पांजलि अर्पित की। सभी कुलवासियों के हृदय आपकी विदाई के अवसर पर विषाद से गद्गद् हुए जा रहे थे। कुल की ओर से आपको एक मान-पत्र अर्पित किया गया। सचमुच ही मान्य उपाध्याय जी की ये सुदीर्घ सेवाएँ कुल के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगी। कुल का वर्तमान कार्यकर्तृ मण्डल आपके ही शिष्य-प्रशिष्यों से भरा हुआ है, और कुल से बाहर भी आपके सैकड़ों शिष्य-प्रशिष्य आपके सुयश का गा रहे हैं। प्रशसित प्रोफेसर जी के प्रति हमारे स्नेह, समादर और श्रद्धा के सुमन अर्पित हैं।

मान्य अतिथि

पिछले दिनों कुल में निम्नलिखित मान्य अभ्यागत पधारे। गुरुकुल आयुर्वेद कालेज के भूतपूर्व उपाध्याय श्री डा० इन्द्रसेन जी। शामलदास कालेज, भावनगर (सौराष्ट्र) के संस्कृत के प्रोफेसर श्री रतिलाल जानी तथा शिक्षातत्व-विद् श्री रेवा शंकर सोमपुरा। करनाल के यशस्वी वैद्यराज श्री विद्यानन्द जी विद्यालंकार का गुरुकुलीय आयुर्वेद-पारषद् में व्याख्यान हुआ।

गुरुकुल संग्रहालय

पिछले मास सग्रहालय में महात्मा बुद्ध की अभिलेख युक्त एक सुन्दर मूर्ति श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरी की स्मृति में पी० सी० चौधरी आई० सी० एस० तथा श्रीमती मीरा चौहान के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

मई और जून मास में दर्शकों की सख्या क्रमशः २१५१ और २८११ थी। सम्मान्य दर्शकों में नेशनल म्यूजियम नई दिल्ली के सुपरिंटेण्डेण्ट श्री जितेन्द्र कुमार राय और दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के श्री सुधीर कुमार गुप्ता तथा चादकरण शारदा और डा० ब्रजमोहन गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सब ने सग्रहालय के कार्य से बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

जनवरी १६५१ से अप्रैल १६५२ तक वेद मन्दिर के सग्रहालय में दर्शकों की सख्या निम्न थी—

मास	दर्शक सख्या
जनवरी १६५१	४६६
फरवरी	३५८
मार्च	६०६
अप्रैल	४१३३
मई	१२७५
जून	१७१४
जुलाई	१३६१
अगस्त	७०७
सितम्बर	८६०
अक्टूबर	२१६६
नवम्बर	१५७६
दिसम्बर	१०१८
योग	१८६००

जनवरी १६५२	११६३
फरवरी	६०७
मार्च	१२१८
अप्रैल	५४६४
मई	२१५१
जून	२८११
कुल योग	१३७१४

गुरुकुल पत्रिका का शुल्क

निम्नलिखित ग्राहकों का चन्दा नाम के सामने लिखे महीने में समाप्त हो रहा है। प्रार्थना है कि अपना चन्दा मनीआर्डर से भेजने की कृपा करें।

ग्राहक स०	ग्राहक का नाम	स्थान	चन्दा समाप्ति का मास
८४५	श्री बालकृष्ण जी	करनाल	श्रावण
८२०	श्री सेक्रेटरी आर्य समाज	जालन्धर	भाद्रपद
८४२	श्री अमिचन्द	फीजी	कार्तिक
५८६	श्री राधाकृष्ण गार्ड	इलाहाबाद	श्रावण
५४७	श्री हरगोविन्द दुबे	मगरोना	आषाढ़
७००	हिन्दी विद्यामन्दिर	उत्तरीय अफ्रिका	श्रावण
७०१	श्री एकलिंग सत्रकार	उदयपुर	आषाढ़
६७६	श्री हेडमास्टर	झालावाड़ राज्य	आश्विन
६१५	श्री जागेराम शर्मा	नई देहली	श्रावण
६५५	श्री ओंकारनाथरेड्डी	हैदराबाद	आषाढ़
५४६	आर्य कुमार सभा	गुजोटी	कातिक
५४२	श्री राम आर्य	अलवर	कातिक
४३८	श्री विश्वम्भरशरण	बनारस	कातिक
४३०	श्री बख्तावरसिंह	खैराबाद	श्रावण
८२८	श्री आचार्य	गु० कु० झज्जर	आश्विन

★

गुरुकुल पत्रिका के चौथे वर्ष के लेखकों और उनकी रचनाओं की सूची

पहले अकारादि क्रम से लेखक का नाम है, फिर लेख का शीर्षक, उसके आगे अङ्क की संख्या और फिर पृष्ठ संख्या है।

★

गुरुकुल पत्रिका के चौथे वर्ष में छपे लेखों की सूची

विषय के अनुसार अकारादि क्रम से। पहली सख्या वर्ष को बताती है दूसरी पृष्ठ को।

धर्म, संस्कृति

पारिभाषिक शब्दावली

भाषा

यात्रा, भ्रमण

लिपि

वनस्पति जगत

वैदिक स्वाध्याय

★

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग „ २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ „ ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १)
वैदिक स्वप्न विज्ञान „ २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर,सजिल्द,अजिल्दश्रीचमूपति२),१॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश१,२,३भाग स्वा०श्रद्धानन्द,१),१),१॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।-)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] „ ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] „ २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] „ १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] „ १)
मिर्च [काली, सफेद और लाल] „ १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] „ ३।)
सांपों की दुनियां „ ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७),६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ।)
महावीर गैरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [सशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ॥।=)
„ „ २ भाग [तीसरा संस्करण] ॥=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७),७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासपद १,२,३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ॥)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्डकपोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।